वैदिक रहस्य — तृतीय भाग

यथा यथा हि पुरुषः शास्त्रं समधिगच्छति ।
तथा तथा विजानाति विज्ञानं चास्य रोचते ॥ मनुः

सम्पादक—

शिवशंकर शर्म्मा,

काव्यतीर्थ

आगरा रामभूषण प्रेस में मुद्रित ।

प्रथमवार	संवत १९६८ वि०	मूल्य ॥=)
१०००	सन् १९११ ई०	डा० म०)॥

Printed under the authority of Rishishwar Nath Bhatta B. A.
Propr, Ram Bhooshun Press, Agra.
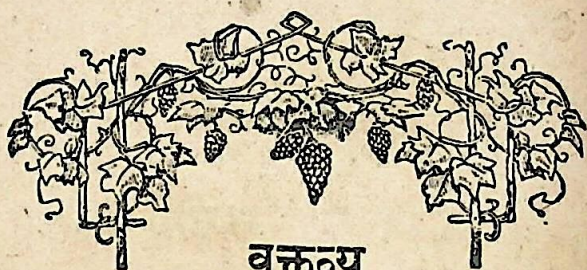
वक्तव्य

ईश्वर की कृपा से " वैदिक रहस्य " का तृतीय भाग " वैदिक विज्ञान " मुद्रित होकर तैयार है । वैदिक विज्ञान का अन्त नहीं । वेद शब्द का अर्थ ही विज्ञान है वेदों में ज्ञान विज्ञान भरे पड़े हुए हैं । जितना हीं इसपर विचार किया जाय उतना ही नवीन २ अर्थ प्रतीत होता जायगा । वेद एक अद्भुत पदार्थ पृथिवी पर है । पृथिवी पर के सब मनुष्य को उचित है कि वह वेदों को जाने परन्तु भारतवासियों को तो वेद जानना ही प्रधान धर्म है । वेदों के बोध के लिये ही अन्यान्य शास्त्र पढ़ाए जाते हैं यही सिद्धान्त ऋषियों का है इस अवस्था में यदि ये वेदों की उपेक्षा करते हैं तो वे अपने धर्म से च्युत होते हैं । अतः सर्व प्रकार वेदों का स्वाध्याय कर्त्तव्य है । इसमें केवल विज्ञान के दो तक उदाहरणमात्र स्थालीपुलाकन्याय से दिखलाए गए हैं जिससे कि लोगों की वेदों में प्रवृत्ति हो । आप लोग स्वयं वेदों को पढ़ कर देखें कि इन में क्या २ हैं ॥ इति ॥

मिथिलादेश निवासी

ता० २२-११-१९११ [शिवशङ्कर शर्म्मा,

काव्यतीर्थ

वैदिक-विज्ञान ।

शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष ये छः वेदों के मुख्य अङ्ग माने गए हैं । सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, पूर्व- मीमांसा और वेदान्त ये छः वेदों के उपांग कहे गए हैं । इतने से आप समझ सकते हैं कि तर्क, हेतु और उपपत्ति से बाहर वेद नहीं हैं । जैसे पृथ्वी पर के अन्यान्य धर्म्मग्रन्थ सुतर्क से भी सुयुक्ति मे भी और प्रसिद्ध विज्ञान शास्त्रों से भी डरते रहते हैं, अपने शिष्यों को चिताते रहते हैं कि तर्क करना शैतान का काम है, धर्म्म में केवल विश्वास ही उचित है इत्यादि । हां, यह परमोचित है कि परमात्मा में सब कोई विश्वास करें परन्तु इसका अभिप्राय यह कदापि नहीं है कि मिथ्या को भी सत्य ही मान कर विश्वास करें । धर्म्मग्रन्थों के लेखक वा प्रचारक यद्यपि शुभेच्छु और मनुष्यहितकारी थे परन्तु विज्ञानशास्त्र की ओर वे ध्यान नहीं दिया करते थे अतः उनके ग्रन्थों और उपदेशों में अनेक त्रुटियां और शतशः अशुद्धियां रह गईं । पीछे उनके अनुयायी उन अशुद्धियों को भी सत्यमानकर देशों में प्रचार करने करवाने लगे । इस महामोह के कारण देशों में महाक्षति हुई । वेद ऐसे नहीं । वेद किसी सम्प्रदाय के ग्रन्थ नहीं । इनमें बहुत स्वच्छ कथाएं हैं । अतः ये तर्क व युक्ति से

नहीं भागते। प्रत्युत पचासों स्थलों में उपदेश देते हैं कि तर्क करो, खोज करो, पूछो, तबही तुम ज्ञानी बनोगे। एवमस्तु। मैं दो चार उदाहरण यहां लिखूंगा जिन से आप को प्रतीत होगा कि वे कैसे २ गूढ़ विज्ञान को बतलाते हैं। प्रायः पृथिवी पर जितने सम्प्रदायीग्रन्थ हैं उन सब में पृथिवी का कुछ न कुछ वर्णन पाया जाता है। परन्तु वे सबके सबही त्याज्य हैं क्योंकि वे प्रत्यक्ष विज्ञान से विरुद्ध हैं। पृथिवी किस पर ठहरी हुई है। इसकी लम्बाई, चौड़ाई, ऊंचाई, मोटाई कितनी है। यह गोल या दर्पणाकार चिपटी है। जैसे किसी वर्तन का ऊर्ध्व भाग और अधोभाग होता है क्या वैसाही पृथिवी का भी कोई ऊपर का और कोई नीचे का भाग है? क्या हम ऊपरके भाग में बसते हैं और नीचेके भाग में असुर रहते हैं। या भीतर से पृथिवी पोली है जहां असुर राक्षस निवास करते हैं? रात्रि और दिन क्यों होता। ३६४ अहोरात्र के पश्चात् पुनः वही समय कैसे आता चन्द्र क्यों घटता और बढ़ता ग्रहण क्यों होता इत्यादि शतशः बातें प्रत्येक मनुष्य को जाननी चाहिये। यद्यपि इनमें से एक २ विषय का एक २ महान् शास्त्र है आज कल इनकी महती उन्नति होती जाती है। पाठशालाओं में ये शास्त्र पढ़ाए भी जाते हैं अतः इस विषय की यहां आवश्यकता नहीं थी। तथापि जिस कारण वर्तमान सम्प्रदायी-ग्रन्थ तथा पुराण इस प्रकाशमय समय में भी महान्धकार ही फैला रहे हैं और वेदों को ही अपना मूल कारण बताते हैं अतः वेदों से भी ये विषय दरसाए जांय ताकि वेदों के

मानने हारे सारे सम्प्रदायी ग्रन्थ सुधर जांय और उनके अनुयायी वैदिक पथ पर आकर कल्याण भागी बनें । इतना कह कर मैं अब अभीष्ट विषय का निरूपण करता हूं ।

पृथिवी का भ्रमण ।

अहस्ता यदपदी वर्धत क्षाः शचीभिर्वेद्यानाम् । शुष्णं परि प्रदक्षिणिद् विश्वायवे निशिश्नथः । ऋ० १० । २२ । १४

क्षा=पृथिवी । पृथिवी के गौ, ग्मा, ज्मा, आदि २१ नाम निघण्टु १।१ में उक्त हैं। इनमें कए नाम क्षा है । शची=कर्म्म, क्रिया, गति। निघण्टु में अपः, अप्नः आदि २६ नाम कर्म्म के हैं. इनमें शची का भी पाठ है। शुष्ण=यह नाम आदित्य अर्थात् सूर्य्य का भी है यथा " शुष्णस्यादित्यस्यशोषयितुः " निरुक्त ५ । १६ पृथिवी पर के रस को सूर्य्य शोषण किया करता है अतः सूर्य्य का नाम शुष्ण है । प्रदक्षिणित्=घूमती हुई । विश्वायवे=विश्वास के लिये । अथमन्त्रार्थ—(क्षा) यह पृथिवी (यद्) यद्यपि (अहस्ता) हस्तरहिता और (अपदी) पैरसे ही शून्य है तथापि (वर्धत) बढ़ रही है अर्थात् हाथ पैर न होने पर भी यह चलरही है (वेद्यानाम्+शचीभिः) वेद्य=जानने योग्य जो परमाणु उनकी क्रियाओं से प्रेरित होकर चलरही है अथवा स्वपृष्ठस्थ विविध पर्वत आदि पदार्थों और मेघादिकों की क्रियाओं के साथ२ घूमरही है। किसकी चारोंतरफ प्रदक्षिणा कररही है । इसपर कहते हैं (शुष्णम्+परि) सूर्य्य के परितः=चारों

तरफ (प्रदक्षिणित्) प्रक्षिणा करती हुई घूमरही है। आगे परमात्मासे प्रार्थनाहै कि (विश्वायवे+निशिश्नथः) हे परमात्मन्! हम मनुष्यों के विश्वास के लिये आपने ऐसा प्रबन्ध रचा है॥ भाष्यकार सायण के समय में पृथिवी का भ्रमण-विज्ञान सर्वथा विलुप्त होगयाथा अतः ऐसे २ मन्त्र के अर्थ करने में इनकी बुद्धि चकरा जाती है। सायण कहते हैं—

यद्वा शुष्णस्याच्छादनार्थं हस्तपादवर्जिता काचित्पृथिवी वेदितव्यानामसुराणां मायारूपैः कर्मभिः शुष्णमसुरं वेष्टित्वा प्रदक्षिणं यथा भवति तथाऽवस्थिताऽवर्धत तदानी तां मायोत्पादितां पृथिवीं विश्वायवे सर्वव्यापकस्य मरुद्गणस्य प्रवेशनार्थं निशिश्नथः॥

भाव इसका यह कि असुरों ने अपनी माया से एक पृथिवी बनाई बनाकर कहा कि शुष्ण और इन्द्र का युद्ध हो रहा है इस हेतु तू शुष्ण की चारों तरफ वेष्टित हो प्रदक्षिणा करती रहो जिससे इन्द्र यहां न पहुंच सके। इन्द्र को यह खबर मालूम हुई। मरुद्गणों को पहले वहां भेजा। वे वहां नहीं पहुंच सके। तब इन्द्र ने आकर उस पृथ्वी को ताड़ना दी. वह भाग गई। मरुद्गण वहां पैठ शुष्ण को छिन्न भिन्न करने लगे। अब आप समझ सकते हैं कि सीधा साधा अर्थ छोड़ ये भाष्यकार कैसा अज्ञातार्थ लिखते हैं। अब द्वितीय ऋचा पर ध्यान दीजिये जिससे विस्पष्ट हो जाता है कि केवल

पृथिवी ही नहीं किन्तु पृथिवी जैसे सकल ग्रह, नक्षत्र आदि भी स्थिर नहीं हैं।

कतरा पूर्वा कतरा परायोः कथा जाते कवयः को विवेद। विश्वं त्मना विभ्रतोयद्ध नाम वि वर्त्तेते अहनी चाक्रियेव ऋ०॥ १। १८५। १

इस ऋचा के द्वारा अगस्त्य ऋषि पूछते हैं कि (अयोः) इस पृथिवी और द्युलोक में से (कतरा+पूर्वा) कौनसा आगे है और (कतरा+परा) कौनसा पीछे है या कौनसा ऊपर और कौनसा नीचे है (कथा+जाते) कैसे ये दोनों उत्पन्न हुए (कवयः+कः+वि+वेद) हे कविगण ? इसको कौन जानता है। इसका स्वयं उत्तर देते हैं (यद्+ह+नाम) जो कुछ पदार्थ जात इन दोनों से सम्बन्ध रखता है उस (विश्वम्) सब को ये दोनों (बिभ्रतः) धारण कर रहे हैं अर्थात् सब पदार्थ को अपने साथ लेकर (वि+वर्त्तेते) घूम रहे हैं अहनी+चाक्रिया+इव) जैसे दिन के पश्चात् रात्रि और रात्रि के पश्चात् दिन आती ही रहता है और जैसे रथ का चक्र ऊपर नीचे होता रहता है तद्वत् ये दोनों द्यावापृथिवी एक दूसरे के ऊपर नीचे हो रहे हैं। अतः आगे पीछे का इस में विचार नहीं हो सकता। जब पृथिवी और सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, दूर २ भ्रमण कर रहे हैं तब यह नहीं कहा जा सकता है कि इन दोनों में ऊपर नीचे कौन हैं ? यह ऋचा चक्र के दृष्टान्त से विस्पष्ट कर देती हैं कि पृथिवी अवश्य घूम रही है। अब

तृतीय ऋचा लिखता हूं जो और भी विस्फुट उदाहरण पृथिवी के भ्रमण का है।

सविता यन्त्रैः पृथिवीमरम्णादस्कम्भने सविता द्यामदृंहत्। अश्वमिवाधुक्षद्धुनिमन्तरिक्षमतूर्ते बद्धं सविता समुद्रम् ऋ० १०। १४९। १

(सविता) सूर्य्य (यन्त्रैः) रज्जु के समान अपने आकर्षण से (पृथिवीम्) पृथिवी को (अरम्णात्) बांधता है और (अस्कम्भने) अनारम्भ, निराधार आकाश में (द्याम्+अदृंहत्) अपने परितः स्थित द्युलोकस्थ अन्यान्य ग्रहों को भी दृढ़ किए हुए है। आगे एक लौकिक उदाहरण देकर समझाते हैं (अतूर्ते) टूटने के योग्य नहीं जो आकर्षणरूप रज्जु है उसमें (बद्धम्) बंधे हुये (धुनिम्) नादकरते हुए (समुद्रम्) बड़े जोर से भागने हारे, पृथिवी, शनि, शुक्र, मंगल, बुध, आदि ग्रह रूप जो लोक है उसको (अन्तरिक्षम्) निराधार आकास में (अश्वम्+इव+अधुक्षत्) घोड़े के समान घुमा रहा है अर्थात् जैसे नूतन घोड़े को शिक्षित करने के लिये लगाम पकड़ सवार खड़ा हो जाता और उस घोड़े को अपनी चारों तरफ घुमाया करता है। वैसा ही यह सूर्यरूप सवार अश्वसदृश पृथिव्यादि लोक को अपनी चारों तरफ घुमा रहा है। इससे बढ़कर विस्फुट उदाहरण क्या हो सकता है अतः उपरिष्ठ मन्त्रों से दो बातें सिद्ध हैं कि—

१—पृथिवी सूर्य की परिक्रमा करती है और

२—सूर्य के आकर्षण से यह इधर उधर नहीं होसकती अपने मार्ग को छोड़ अणुमात्र भी घसक नहीं सकती। **अन्तरिक्षम्** सप्तमम्यर्थ में प्रथमा है **समुद्र**=समुद्द्रवति=जो बहुत जोर से दौड़ता है।

सूर्य्य की परिक्रमा कितने दिनों में करलेता है इसपर कहते हैं।

द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क उ तच्चिकेत। तस्मिन् त्साकं त्रिशता न शङ्कवोऽर्पिताः षष्टिर्न चलाचलाशः ऋ० १।१६४।४८

(चक्रम्) यहां वर्ष ही चक्र है क्योंकि यह रथके पहिया के समान क्रमण अर्थात् पुनः २ घूमता रहता है उस चक्र में (द्वादश+प्रधयः) जैसे चक्र में १२ छोटी २ अर प्रधि=कीलें हैं। वैसे सम्वत्सर में वारह मास होते हैं (त्रीणि+नभ्यानि) इसके नभ्य अर्थात् नाभिस्थान में रहने हारे दारु विशेष समान ग्रीष्म, वर्षा, हेमन्त तीन ऋतु हैं (कः+उ+तत्+चिकेत) इस तत्त्व को कौन जानता है (तस्मिन्+साकम्+शंकवः) उस वर्ष में कीलों सी (त्रिशता+षष्ठिः) ३०० और ६० दिन (अर्पिताः)स्थापित हैं (न+चलाचलाशः) वे ३६० दिनरूप कीलें कभी विचलित होनेवाली नहीं हैं। इससे यह सिद्ध हुआ कि एकवर्ष में ३६० तीन सौ साठ दिन होते हैं। पृथिवी के भ्रमण से ही वे दिन बनते हैं अतः ३६० दिन में पृथिवी सूर्य्यकी परिक्रमा करलेती है। पुनः इसी विषय को दूसरे तरह से कहते हैं।

द्वादशारं न हि तज्जराय वर्वर्ति चक्रं परि द्यामृतस्य । आ पुत्रा अग्ने मिथुनासो अत्र सप्त शतानि विंशति श्च तस्थुः ऋ० १ । १६४ । ११

(ऋतस्य) सत्यस्वरूप काल का (चक्रम्) सम्वत्सर रूप चक्र (द्याम्+परि) आकाश में चारों तरफ (वर्वर्ति) घूम रहा है (द्वादशारम्) जिस में मास रूप १२ अर हैं (नहि+तत्+जराय) वह चक्र कभी जीर्ण नहीं होता (अग्ने) हे परमात्मन्! आपने कैसा अद्भुत प्रबन्ध रचा है (अत्र) इस चक्र में (पुत्राः) पुत्र के समान (सप्त+शतानि+विशंतिः+च आतस्थुः) ७०० और २० स्थिर हैं। वर्ष में ३६० दिन और ३६० रात्रि को मिलाकर ७२० अहोरात्र होते हैं इतने अहोरात्र में पृथिवी सूर्य्य की परिक्रमा करती है। यद्यपि ३६५ दिनों के लगभग में यह पृथिवी सूर्य की परिक्रमा करती है। तथापि यह चन्द्र मास के हिसाब से ३६० दिन कहे गए हैं । चन्द्रमास में एक अधिक मास मान कर हिसाब पूरा कियाजाता है । इस अधिक मास का भी वर्णन वेद में पाया जाता है।

पृथिवी गोल है ।

यद्यपि देखने से प्रतीत होता है कि दर्पण के समान पृथिवी सम अर्थात् चिपटी है तथापि अनेक प्रमाणों से पृथिवी की आकृति गेंद या कदम्बफल के समान गोल है यह सिद्ध होता है । अपने संस्कृतशास्त्रों में इसी कारण इसका नाम ही भूगोल रक्खा है यदि कोई आदमी ५० कोश का ऊंचा

हो तो झट से उसको इसकी गोलाई मालूम होने लगे । इस पृथिवी के ऊपर हिमालय पर्वत भी गृह के ऊपर चींटी के समान है अतः इसकी गोलाई हम मनुष्यों को प्रतीत नहीं होती।

१—इसके समझने के लिये समुद्रस्थान लीजिये । समुद्र सैंकड़ों कोश तक चौड़ा होता है। जल की सतह बराबर हुआ करती है । यदि दर्पणाकार पृथिवी होती तो समुद्र में अति दूर आता हुआ भी जहाज दीखना चहिये और जहाज के नीचे से ऊपर तक सब भाग एक वार भी दीख पड़े किन्तु सो होता नहीं । अति दूरस्थ जहाज तो दीखता ही नहीं। ज्यों २ समीप आता जाता है त्यों २ प्रथम जहाज का ऊपर का शिर दीखता है फिर मध्य भाग तब नीचे का भाग। अब आप विचार सकते हैं कि जल की बरावर सतह पर ऐसी विषमता क्यों? इसका एक मात्र कारण पृथिवी की गोलाई है। पृथिवी की गौलाई के कारण जहाज के नीचे का भाग छिपा रहता है।

२—पुनः यदि किसी स्थान से आप किसी एक तरफ प्रस्थान करें, और सीधे चलते ही जांय तो पुनः उसी स्थान पर पहुंच जायंगे जहां से आप ने प्रस्थान किया था। इसका भी कारण गोलाई है।

३—चन्द्र के ऊपर पृथिवी की छाया पड़ने से चन्द्र ग्रहण होता है। वह छाया गोल दीखती है इससे सिद्ध है कि पृथिवी गोल है इस सम्बन्ध में अपने शास्त्र का सिद्धान्त देखिये।

मैं ने प्रारम्भ में ही कहा है कि ज्योतिषशास्त्र वेद का एक अंग है। मुहूर्त्तचिन्तामणि, वृहज्जातक, लघुजातक आदि नहीं किन्तु गणितशास्त्र ही ज्योतिष हैं जिसमें पृथिवी से लेकर ज्योतिःस्वरूप सूर्यतक का पूरा २ हिसाव सब प्रकार से है वह ज्योतिषशास्त्र है। जैसे व्याकरणशास्त्र बहुत दिनों से चले आते थे पश्चात् पाणिनि ने एक सर्वाङ्ग सुन्दर व्याकरण बनाया तत्पश्चात् वैसा व्याकरण अभी तक नहीं बना है। वैसे ही ज्योतिषशास्त्र अति प्राचीन है। सबसे पिछले आचार्य भास्कराचार्य ने लीलावती, बीजगणित सिद्धान्तशिरोमणि आदि अनेक ग्रन्थ ज्योतिषशास्त्र के रचे। वेही आजकल अधिक पठन पाठन में विद्यमान है। शब्द कल्पद्रुम नाम के कोश में भूगोल शब्द के ऊपर एक अच्छा लेख दिया हुआ है। भास्कराचार्य कृत सिद्धान्तशिरोमणि के भी अनेक श्लोक यहां लिखे हुए हैं मैं इस समय इसी कोश से कतिपय श्लोक उद्धृत करता हूं। मैं इस समय भ्रमण कर रहा हूं। अतः मूल ग्रन्थ मेरे पास नहीं है। आप लोग मूल ग्रन्थ में प्रमाण देख लेवें। भारतवर्ष में सिद्धान्तशिरोमणि इतना प्रसिद्ध है कि इसके बिना कोई ज्योतिषी नहीं बन सकता। इसका अनुवाद इंगलिश आदि अनेक भाषाओं में हुआ है। शंका समाधान करके भास्कराचार्य सिद्ध करते हैं कि पृथिवी गोल है।

यदि समा मुकुरोदरसंनिभा भगवती धरणी तरणिः क्षितेः॥ उपरि दूरगतोऽपि परिभ्रमन्

किमु नरै रमरै रिव नेक्ष्यते ॥ १ ॥ यदि निशाजनकः कनकाचलः किमु तदन्तरगः स न दृश्यते ॥ उद-गयन्ननु मेरु रथांशुमान् कथ मुदेति स दक्षिण, भागतः ॥

अर्थ—यदि भगवती पृथिवी दर्पण के समान समा अर्थात् समसतहवाली है तो पृथिवी के ऊपर बहुत दूर भ्रमण करते हुए सूर्य को जैसे अमरगण सदा देखा करते हैं वैसेही मनुष्य भी सदा सूर्य को क्यों नहीं दीखते अर्थात् पृथिवी पर क्योंकर प्रातः मध्याह्न सायं और रात्रि होती है इससे प्रतीत होता है कि पृथिवी सम नहीं है । जैसे ऊंचे पर्वत के पूर्वभाग की सीध में वा उसी पर रहने हारे पदार्थ पश्चिमभागस्थ पुरुष को नहीं दीखते तद्वत् पृथिवी के एक भाग में रहनेहारा पुरुष पृथिवी के रोकावट के कारण सूर्य को नहीं दीखता । घूमती हुई पृथिवी का जितना २ भाग सूर्य के सामने पड़ता जाता है उतना २ भाग में सूर्य की किरणें पड़ने से दिन कहाता है इसी प्रकार इसके विरुद्ध रात्रि । यदि यह कहो कि वह सूर्य सुमेरु पर्वत के पीछे चला जाता है इस कारण नहीं दीखता तो यह ठीक नहीं क्योंकि इस अवस्था में वह सुमेरु ही दीख पड़े किन्तु वह दीखता नहीं अतः यह कथन असत्य है और इस में द्वितीय हेतु यह है कि तब उत्तरायण और दक्षिणायण भेद भी कभी नहीं होने चाहियें क्योंकि सूर्यसमानरूप से सुमेरु की परिक्रमा सब दिन करता है यह आपका सिद्धान्त है तब ये दो अयन क्यों होते ? अतः सुमेरु पर्वत निशा का

कारण नहीं, पुनः वही शंका बनी रही कि मनुष्य को सर्व समान रूप से सूर्य क्यों नहीं दीखता? इस से सिद्ध है। पृथिवी गोल है।

यदि पृथिवी गोल है तो हमें वैसी क्यों नहीं दीख पड़ती उसका समाधान पूर्व में लिख आया हूं। भास्कराचार्य वैसा ही कहते हैं यथा—

समोयतः स्यात् परिधेः शतांशः पृथ्वी पृथ्वी नितरां तनीयान् ॥ नरश्च तत्पृष्ठगतस्य कृत्स्ना समेव तस्य प्रतिभात्यतः सा ॥

जिस कारण पृथिवी बहुत ही विस्तीर्ण है अतः उसका शतांश भाग सम है। मनुष्य बहुत ही छोटा है। इस कारण इसको सम्पूर्ण पृथिवी सम ही प्रतीत होती है।

पृथिवी का ऊपर और नीचा भाग।

यद्यपि छोटे से छोटे पदार्थ का भी ऊपर और नीचा भाग माना जा सकता है। सेव और कदम्ब फल का भी कोई भाग नीचे का माना ही जाता है। वैसाही पृथिवी का भी हिसाब हो सकता है किन्तु आश्चर्य यह है कि पृथिवी के सामने मनुष्य जाति इतनी छोटी है कि इसकी आकृति नांही की बराबर है। इसी हेतु पृथिवी के अर्धगोलक पर रहने हारा अन्य अर्धगोलक पर रहने हारे को अपने से नीचे समझता है किन्तु वे दोनों एक ही सीध में हैं नीचे ऊपर नहीं। जैसे अमेरिकादेश पृथिवी के अर्धगोलक में है और द्वितीय अर्धगोलक में योरोप एशिया

देश है। ये दोनों एकसीध में होने पर भी एक दूसरे के ऊपर नीचे प्रतीत होता है। भास्कराचार्य इस पर कहते हैं—

योयत्र तिष्ठत्यवनीतलस्थमात्मानमस्या उपरि स्थितञ्च। स मन्यतेऽतः कुचतुर्थसंस्था मिथश्च ते तिर्य्यगिवामनन्ति ॥

पृथिवी के किसी भाग में जो जहां है वह अपने को वहां ऊपर ही मानता है और दूसरे भागस्थ पुरुष को नीचे समझता है।

पृथिवी का आधार।

अब यह तो विस्पष्ट हो गया कि जब भूमि घूम रही है तब इसके आधार की आवश्यकता नहीं। धर्म्माभास पुस्तकों में यह एक अति तुच्छ प्रश्न और समाधान है। मुझे आश्चर्य होता है इन ग्रन्थकर्त्ताओं ने एकाग्र हो कभी इस विषय को न विचारा और न सूर्य्य चन्द्र नक्षत्रों की ओर ध्यान ही दिया। उन्हें यह तो बड़ी चिन्ता लगी कि यदि पृथिवी का कोई आधार न हो तो यह कैसे ठहर सकती किन्तु इन्हे यह नहीं सूझा कि यह महान् सूर्य्य निराधार आकाश में कैसे घूम रहा है हमारे ऊपर क्यों न गिर पड़ता। इन लाखों कोटियों ताराओं को कौन असुर पकड़े हुए है। हमारे शिर पर गिरकर क्यों नहीं चूर्ण २ कर देता। हां। इसका भी उपाय वा समाधान इन सम्प्रदायियों ने अच्छा गढ़ा। जब निर्बुद्धि शिष्यों ने पूछा कि यह सूर्य्य चन्द्र नक्षत्र आदि क्यों नहीं गिरते तो इसका उत्तर दिया कि सूर्य साक्षात् भगवान् हैं ये चेतन देव हैं। रथ पर चढ़कर

पृथिवी की परिक्रमा कर रहे हैं यहां से पुण्यवान् पुरुष मरकर सूर्य्यलोक में निवास करते हैं इसी प्रकार चन्द्रमा आदि भी चेतन देव हैं पितृगण यहां अमृतपान करते हुए आनन्द भोग रहे हैं इत्यादि गप्प कहकर शिष्यों को समझा दिया किन्तु पुनः अन्ध शिष्यों ने यह नहीं पूछा कि वे रथ किस२ आधार वा मार्ग पर चल रहे हैं। प्रश्न किए भी गए हों तो ऐसे सम्प्रदायियों को समाधान गढ़ने में कितनी देर लगती है। झट से कह दिये होंगे कि अरे! ये सब देव हैं। वे स्वयं उड़ा करते हैं जो चाहें सो करलें इनको क्या पूछते हो ये बड़े सामर्थी हैं। विचारी रह गई पृथिवी। यह देवी नहीं और चेतन भी नहीं। यदि पृथिवी चेतन देवी सूर्य्यादिवत् मानी जाती तो इसके आधार की भी चिन्तारूप नदियों में वे गोते न खाते। जिसकी आज्ञा से सूर्य्य चन्द्र आदि नियत मार्ग पर चल रहे हैं नियत समय पर उदित और अस्त होते इसी की आज्ञा से यह पृथिवी ठहरी हुई है यदि इतना भी वे विचार कर लेते तो इतने धोखे न खाते "अतिपरिचयादवज्ञा" अति परिचय से निरादर होता है। भूमि पर सम्प्रदायी निवास करते हैं प्रतिदिन देखते हैं इसको देव वा देवी कहकर शिष्यों को बहला नहीं सकते थे। अतः अपनी २ बुद्धि के अनुसार इसके अनेक आधार गढ़ लिये। किसी ने कहा सांप के शिर के ऊपर पृथिवी है किसी ने कहा कि कछुए की पीठ पर स्थापित है किसी ने कहा कि नौका के समान जल के ऊपर तैर रही है इस प्रकार अनेक कल्पनाएं रक अपने २ शिष्यों को सम्बोधित करते गए। किन्तु किसी

सम्प्रदायी को इसका सत्यभेद मालूम ही नहीं था। वे कैसे बतलाते। वेद ही सत्य भेद दिखलाते हैं। शिष्यों ने यह नहीं पूछा कि यदि सांप पर पृथ्वी है तो वह सांप किसपर है। "नात्र कार्य्या विचारणा नात्र कार्य्या विचारणा" ऐसी बातें कह मन को सन्तोष देते रहे। भास्कराचार्य्य ने उन सब गप्पों का अच्छा खण्डन किया है परन्तु ये आचार्य पौराणिक समय में हुए हैं। पृथिवी घूमती है यह बात इनके समय में नहीं मानी जाती थी अतः पृथिवी को ये महात्मा भी अचल ही मानते थे और इसकी चारों तरफ सूर्य्य ही घूम रहा है ऐसा ही समझते थे किन्तु वेद से यह विरुद्ध बात है। पृथिवी ही सूर्य की चारों तरफ घूमती है। पृथिवी से १३००००० तेरह लक्ष गुणा सूर्य्य बड़ा है। सूर्य के सामने पृथिवी एक अति तुच्छ चींटी के बराबर है। तब कब सम्भव है कि एक अति तुच्छ चींटी की परिक्रमा पर्वत करे। अब आधार के विषय में भास्करीय खण्डन परक श्लोक सुनिये।

मूर्तो धर्त्ता चेद्धरित्र्यास्तदन्य स्तस्याप्यन्योऽप्येव मत्रानवस्था। अन्त्ये कल्प्या चेत् स्वशक्तिः किमाद्ये किन्नो भूमिः साष्टमूर्तेश्च मूर्तिः॥

अर्थ—यदि पृथिवी के पकड़नेहारा कोई शरीर धारी है तो उसका भी कोई अन्य पकड़नेहारा होना चाहिये। यदि कहो उसका भी पकड़नेहारा है तो पुनः उसका भी कोई पकड़नेहारा होना उचित है। इस प्रकार अनवस्था दोष

होगा। इस दोष से ग्रस्त होकर आपको किसी अन्तिम ध
के विषय में कहना पड़ेगा कि वह अपनी शक्ति पर स्थित है
तो मैं पूछता हूं कि आदि में ही पृथिवी को ही अपनी शक्ति
पर ठहरी हुई क्यों नहीं मान लेते क्योंकि यह भूमि भी तो
महादेव की अष्टमूर्तियों में से एक मूर्ति है तो वह अपनी शक्ति
पर क्यों नहीं ठहर सकती ?

अभी हमने आप से कहा है कि सूर्य्यादिवत् इसको भी यदि
चेतन और स्वशक्तिसम्पन्न मान लेते तो इतनी चिन्ता न करनी
पड़ती किन्तु समीप रहने के कारण पृथिवी को वैसी न मनवा
सके। भास्कराचार्य वही बात कहते हैं कि यह भूमि भी महादेव
की एक मूर्ति है तब वह क्या अपनी शक्ति पर ठहर नहीं
सकती ? इसको पुनः विस्फुट कर देते हैं—

**यथोष्णतार्कानलयोश्च शीतता विधौ द्रुतिः के
काठिनत्व मश्मनि। मरुच्चलो भूरचला स्वभावतो
यतो विचित्राः खलु वस्तुशक्तयः ॥**

जैसे स्वभाव से ही सूर्य में और अग्नि में उष्णता, चन्द्रमा
में शीतता, जल में द्रुति (वहनशीलता) शिला में कठोरता है
और जैसे वायु चलता है वैसे ही स्वभावतः पृथिवी अचला है
क्योंकि वस्तुशक्तियां नाना प्रकार की हैं। अतः यह पृथिवी
स्वशक्ति के ऊपर स्थित होकर अचला है यह कौनसी आश्चर्य
की बात है। भास्कराचार्य ऐसे ज्योतिर्विद होने पर भी पृथिवी
को अचला मानकर कैसी गलती फैला गए हैं। इतना ही नहीं

ये कहते हैं कि रवि सोम मंगल बुध बृहस्पति शुक्र शनि आदि ग्रह और ये नक्षत्र मण्डल सब ही इसी पृथिवी के परितः स्थित हैं और यह भूमिमण्डल अपनी शक्ति से स्थित हैं यथा—

भूमेः पिण्डः शशांकज्ञकविरविकुजेज्यार्कि नक्षत्रकक्षा वृत्तैर्वृत्तो वृतः सन् मृदनिलसलिल व्योमतेजोमयोऽयम् ॥ नान्याधारः स्वशक्त्या वियति च नियतं तिष्ठतीहास्य पृष्ठे निष्ठं विश्वञ्च शश्वत् सदनुजमनुजादित्यदैत्यं समन्तात् ॥

इसका कारण यह है कि वे वैदिक विज्ञान की ओर नहीं गए अथवा इस ओर इनका ध्यान नहीं गया । यह कितनी अल्पज्ञता है कि सूर्य्य चन्द्र आदि कों को चल और पृथिवी को अचला मानें । सूर्य्य चन्द्र को उदित और अस्त होते देख मान लिया कि यह सब चलरहे हैं । पृथिवी की गति इन्हे मालूम नहीं हुई । रेल की गति जैसे एक अति क्षुद्र चीटी को मालूम नहीं होती होगी अतः पृथिवी को अचला कहने लगे। जब हम इस बात की समालोचना करते हैं तो यही कहना पड़ता है कि हमारे पूर्वज आचार्य सूक्ष्मता की ओर दूरतक न पहुंच सके और न वेदों का पूरा मनन ही किया। एवमस्तु—

वेदों में पृथिवी के नाम ।

गौ, ग्मा, ज्मा, क्ष्मा, क्षा, क्षमा, क्षोणि, क्षिति, अवनि, उर्वी, मही, रिपः, अदिति, इला, निर्ऋति, भू, भूमिः, गातुः, गोत्रा, । इत्येकविंशतिः पृथिवीनामधेयानि । निघण्टु । १ । १

ये२१नाम पृथिवी के हैं। इनके प्रयोग वेदों में आया करते हैं। इन में से एक भी शब्द नहीं जो पृथिवी के अचलत्व का सूचक हो जब पृथिवी को अचल मानने लगे तो संस्कृत कोश में पृथिवी के नामों के साथ अचला, स्थिरा आदि शब्द भी आने लगे "भूर्भूमिरचलाऽनन्ता रसा विश्वम्भरा स्थिरा" अमरकोश। इससे सिद्ध होता है कि वैदिक समय में पृथिवी स्थिरा नहीं मानी जाती थी । वाचकशब्दों से भी विचारों का बहुत पता लगा है। जिस समय जैसा विचार उत्पन्न होता है शब्द भी तदनुकूल बनाए जाते हैं । जैसे आर्ष ग्रन्थों में ब्राह्मण के लिये मुखज, क्षत्रिय के लिये बाहुज वैश्य के लिये ऊरुज और शूद्र के लिये पज्ज, चरणज आदि शब्द का प्रयोग एक भी पाया नहीं जाता किन्तु अनार्ष ग्रन्थों में इनके शतशः प्रयोग हैं। इससमय में मुख आदि से ब्राह्मण आदि उत्पन्न हुए ऐसा विचार प्रचलित हो चुका था अतः शब्द भी वैसे आते हैं। इसी प्रकार यदि आर्ष समय में पृथिवी को स्थिरा मानते तो अवश्य वैसे शब्द भी आते। प्रत्युत इसके विरुद्ध गोशब्द आया है जिस से पृथिवी की गति मानी जाती थी। यह सिद्ध होता है। "गच्छतीतिगौः" चलनेहारे का नाम ही गौ है। यद्यपि यह अनेकार्थ है तथापि प्रायः चलायमान पदार्थ का ही नाम "गौ" रकखा गया है। अब पृथिवी का गौ नाम क्यों रकखा गया जब यह बिचार उपस्थित होता है तो यही कहना पड़ता है कि ऋषिगण पृथिवी को घूमती हुई मानते थे। तत्पश्चात् जब इनमें से यह विज्ञान लुप्त होगया तब गोशब्द के अनेक धातु और व्युत्पतियां बतलाने लगे।

"गच्छन्ति प्राणिनोऽस्यामिति गौः यां गायन्ति जना सा गौः" वैदिक शब्दों का कोई दोष नहीं। अपने यहां जिज्ञासा के भाव के लोप होने से ऐसी दुर्मति फैली।

पृथिवी और बौद्ध सिद्धान्त

भपञ्जरस्य भ्रमणावलोकादाधारशून्या कुरिति प्रतीतिः। खस्थं न दृष्टंच गुरु क्षमातः खेऽधः प्रयातीति वदन्ति बौद्धाः॥ द्वौ द्वौ रवीन्दू भगणौ चतद्वदेकान्तरौ तावुदयं व्रजेताम्। यदब्रुवन्नेव मनर्थवादान् ब्रवीम्यतस्तान् प्रति युक्तियुक्तम्॥

बौद्ध कहते हैं कि आकाश में निराधार सूर्य्य, चन्द्र नक्षत्र, आदि कों को भ्रमण करते देखते हैं। इसी प्रकार पृथिवी निराधार ही हैं और कोई भी भारी पदार्थ आकाश में स्थिर नहीं रहता अतः पृथिवी को भी स्थिर मानना उचित नहीं। तो यह नीचे को जारही है जैसा मानना चाहिये। जैन और बौद्ध यह भी मानते हैं कि सूर्य, चन्द, नक्षत्र, आदि दो २ हैं एक अस्त होता है तो दूसरा काम करता है। इस पर भास्कराचार्य कहते हैं इनका कथन अनर्थवाद है और इसमें यह युक्ति देते हैं यथा

भूःखेऽधः खलु यातीति बुद्धिर्बौद्ध? मुधा कथम्।
यातायातञ्च दृष्ट्वापि खे यत्क्षिप्तं गुरु क्षितिम्॥

हे बौद्ध? ऐसी व्यर्थ बुद्धि आपको कहां से आई जिससे आप कहते हैं कि यह भूमि नीचे को जा रही है। यदि भूमि नीचे को गिरती हुई रहती तो आकाश में फेंके हुए पत्थर आदि

लघु पदार्थ कभी नहीं पुनः लौट कर पृथिवी को पाते क्योंकि पृथिवी बहुत भारी होने से नीचे को अधिक वेग से जाती होगी और फेंके हुए पदार्थों का वेग उससे न्यून ही रहेगा परन्तु क्षिप्त वस्तु पृथिवी पर आजाती है अतः पृथिवी आकाश में नीचे जा रही है यह मिथ्या भ्रम है और जो यह कहते हैं कि दो २ चन्द्र नक्षत्र आदि हैं सो ठीक नहीं क्योंकि दिन में ही ये देख पड़ते हैं।

पृथिवी के ऊपर मनुष्यों का वास—यह भी एक महा भ्रम है कि हम भारतवासी तो पृथिवी के ऊपर बसते हैं और वलि राजा अपने असुर दलों के साथ पृथिवी के नीचे पाताल में राज्य करता है या नाग लोक कहीं पाताल में हैं। महाशयो पाताल कोई देश नहीं जैसे यहां से हम नीचे भाग को पाताल समझते हैं। वैसे ही उस भाग के रहने हारे हमको पाताल में समझते हैं। भूमि के वास्तविक स्वरूप का बोध न होने से ऐसे कुसंस्कार उत्पन्न हुए हैं पृथिवी के चारों तरफ मनुष्य बसते हैं। और उन्हें सूर्य्य का किरण भी यथासम्भव प्राप्त होता रहता ही है। एक ही समय में पृथिवी के भिन्न २ भाग में भिन्न समय रहता है। जब अर्ध भाग में दिन रहता तब अन्य अर्ध भाग में रात्रि होती है इस विज्ञान को हमारे पूर्वज अच्छे प्रकार जानते थे यथा—

लङ्कापुरेऽर्कस्य यदोदयः स्या त्तदा दिनार्धं यमकोटिपुर्याम्। अधस्तदा सिद्धपुरेऽस्तकालः स्याद्रोमके रात्रिदलं तदैव॥

जिस समय लंका में सूर्य का उदय होता है उस समय यमकोटि नामक नगर में दोपहर, नीचे सिद्धपुरी में अस्तकाल और रोमक में दोपहर रात्रि रहती है।

इससे प्रतीत होता है कि पृथिवी परके सब मनुष्यों में पहले भी आज कलके समान व्यवहार होता था। ज्योतिष शास्त्र की बड़ी उन्नति थी और पृथिवी के ऊपर चारों तरफ मनुष्य बास करते हैं हम विज्ञान को भी जानते थे।

आकर्षण।

वेदों में आकर्षण शक्ति की भी चर्चा है। लोक कहते हैं कि यह नूतन विज्ञान है। योरोपवासी सरऐसेकन्यूटन जी ने प्रथम इसको जाना तब से यह विद्या पृथिवी पर फैली है। परन्तु यह बात नहीं। भारतवर्ष में इसकी चर्चा बहुत दिनों से विद्यमान है। और चुम्बक लोह को देख सर्वपदार्थगत आकर्षण का अनुमान किया गयाथा इसका अभीतक एक प्रमाण यह है कि सिद्धान्तशिरोमणि नाम के ग्रन्थ में भास्कराचार्य ने एक प्राचीन श्लोक उद्धृत किया है वह यह है।

आकृष्टशक्तिश्च मही तया यत् खस्थं गुरु स्वाभिमुखी-करोति। आकृष्यते तत्पततीव भाति समे समन्तात् कुरियं प्रतीतिः॥

सर्वपदार्थगत एक आकर्षण शक्ति विद्यमान है जिस शक्ति से यह पृथिवी आकाशस्थ पदार्थ को अपनी ओर करती है और

जो यह खैंच रही है वह गिरता मालूम होता है अर्थात् पृथिवी अपनी ओर खैंच कर आकाश में फेंकी हुई वस्तु को ले आती है इसको लोक में गिरना कहते हैं । इससे विस्पष्ट है कि भास्कराचार्य्य से बहुत पूर्व यह विद्या देश में विद्यमान थी। आर्य्यभट्टीय नाम के ज्योतिष शास्त्र में भी इसका वर्णन आया है। अब मैं वेदों के दो एक ऋचाएं यहां लिखता हूं जिससे सब संशय दूर हो जायंगे--

आकृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यञ्च । हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन् ऋ० १ । ३५ । २

कृष्ण=आकर्षणशक्ति युक्त । **रज**=लोक" लोका रजांस्युच्यन्ते" निरुक्त, पृथिवी आदि लोक का नाम रज है। **हिरण्यय**= हिरण्यपाणि आदि शब्द बहुत आते हैं। अपनी ओर जो हरण करे, खैंचलावे वह हिरण्य कहाता है । जिस कारण सूर्य का रथ अर्थात् सूर्य्य का समस्त शरीर अपने परितःपदार्थों को अपनी ओर खैंचता है अतः यह रथ हिरण्यय कहाता है। अथ मन्त्रार्थ— (सविता+सूर्य्य) (कृष्णेन+रजसा) आकर्षण शक्ति युक्त पृथिवी बुध बृहस्पति आदि लोकों के साथ (वर्त्तमानः) वर्त्तता हुआ (अमृतम्+मृतम्+च)अमृत जो पृथिवी आदि लोक। मृत जो पृथिवी आदि लोकों में रहनेहारे शरीरधारी जीव इन दोनों को (आनिवेशयन्) अपने २ कार्य में लगाते हुए (देवः) यह महान् देव (हिरण्ययेन+रथेन) हिरणमय=अपनी

ओर हरण करने हारे रथ के द्वारा (भुवनानि पश्यन्) परितः स्थित भुवनों को मानो देखता हुआ (आयाति) निरंतर आवागमन कररहा है ॥२॥

इस ऋचा में कृष्णशब्द दिखलाता है कि सर्वपदार्थ गत आकर्षण शक्ति है। पृथिवी अपनी ओर और सूर्य अपनी ओर खैंचते हुए विद्यमान हैं अतः सूर्य्य के ऊपर पृथिवी गिरकर नष्ट नहीं होती। सूर्य पृथिवी की अपेक्षा करीब १३००००० लक्ष गुणा बड़ा है और इस सौर्य जगत का अधिपति भी वही है। इसलिये इसमें मध्याकर्षणशक्ति भी बहुत है इसमें हेतु की आवश्यक्ता नहीं। अतएव वेद में सूर्यके नाम ही कृष्ण आया है। क्योंकि वह अपनी ओर पृथिवी आदि भुवनों को खैंचे हुए यथा स्थिति रक्खे हुए है।

कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिवमुत्पतन्ति । तआववृत्रन्त्सदनादृतस्यादिद्घृतेन पृथिवी व्युद्यते ॥ ऋ० १ । १६४ । ४७

अर्थ—(हरयः+सुपर्णाः) हरणकरनेहारे सूर्य्य के किरण (नियानं+कृष्णम्) नियमपूर्वक चलनेहारे कृष्ण अर्थात् आकर्षणशक्तियुक्त सूर्य की ओर (अपः+वसाना) साथ जल लेकर (दिवम्+उत्पतन्ति) आकाश में ऊपर उठते हैं अर्थात् जब सूर्य से निकल कर किरण पृथिवी पर आते हैं तो मानों पृथिवी पर के जल लेकर फिर सूर्य के निकट पहुंचते हैं। यह एक आलंकारिक वर्णन है। (ते) वे सूर्य किरण (ऋतस्य+

सदनात्) सूर्य के भवन से (आ+अववृत्रन्) आवागमन करते ही रहते हैं (आत्+इत्) तबही (घृतेन+पृथिवी+वि- उद्यते) जल से पृथिवी सींचा जाता है ॥ ४७ ॥

यहां यद्यपि कृष्णशब्द के अर्थ भिन्न २ भाष्यकरों ने भिन्न प्रकार से किए हैं परन्तु प्रकरण देखने से सूर्य अर्थ ही प्रतीत होता है वेदों में (१) **विचर्षणि** शब्द भी सूर्य के लिये आया है । (वि+चर्षणि) कृष धातु से चर्षणि शब्द सिद्ध होता है कृष धातु का अर्थ प्रायः आकर्षण है इसी से आकर्षण आकृष्टि कृष्ण आदि अनेक शब्द सिद्ध होते हैं । वेद के मन्त्र देखने से विस्पष्ट होगा ।

हिरण्यपाणिः सविता विचर्षणिरुभे द्यावा पृथिवी अन्तरीयते । अपामीवां बाधते वेति सूर्यमभि कृष्णेन रजसा द्यामृणोति ॥ ऋ० १ : ३५।९

अर्थ—(हिरण्यपाणिः) जिसका पाणि=किरण । हिरण्य= हरणशक्तियुक्त ह (विचर्षणिः) जो अत्यन्त आकर्षणशक्ति युक्त है (सविता) वह सूर्य (उभे+द्यावापृथिवी) दोनों द्युलोक और पृथिवी लोक को (अन्तरीयते) अपने २ अन्तर में अर्थात् अपने २ अवकाश में स्थिति रखता है अर्थात् एकलोक को दूसरे लोक के साथ टक्कर खाने नहीं देता (अमीवाम्

(१) चर्षणि शब्द मनुष्य के नाम में भी आया है । कोई कहते हैं कि चर धातु से चर्षणि बनता है कोई इसको कृष धातुसे देवराज यज्वा निर्वचन निघण्टुपर देखिये

अपबाधते) और वह सूर्य सकल उपद्रवों को बाध करता है (सूर्य्यम्+वेति) और वह सूर्य अपनी धूरी पर चल रहा है। सूर्यम् = द्वितीयार्थ में प्रथमा है। (कृष्णेन+रजसा) आकर्षण-शक्तियुक्त तेज के साथ वह सूर्य (द्याम्+अभि+ऋणोति) द्युलोक की चारों तरफ व्यापक हो रहा है। पुन—

पञ्चारे चक्रे परिवर्तमाने तस्मिन्नातस्थुर्भुवनानि विश्वा। तस्य नाक्षस्तप्यते भूरिभारः सनादेव न शीर्यते सनाभिः॥ ऋ० १। १६४। १३

(विश्वा+भुवनानि) सूर्य की चारों तरफ स्थित पृथिव्यादि सर्वलोक (तस्मिन्+चक्रे) उस चक्र के आधार पर (आ+तस्थुः) अच्छे प्रकार स्थित हैं (पञ्चारे) जिस चक्र में ऋतुरूप पांच अर हैं। (परिवर्तमाने) जो चक्र स्वयं ही घूम रहा है (तस्य) उस चक्र का (भूरिभारः) बहुत भारवाला (अक्षः) चक्र के मध्य में वर्तमान धूर (न+तप्यते) पीड़ित नहीं होता और (सनात्+एव+न+शीर्यते) सनातन है और कभी टूटता नहीं (सनाभिः) वह चक्र बन्धनशक्तियुक्त है ॥१३॥

यह ऋचा अनेक वस्तु दिखलाती है १—भुवनानि विश्वा सम्पूर्ण विश्व सूर्य के रथपर स्थित हैं यह सिद्ध करता है कि पृथिव्यादि लोकों से यह बहुत ही बड़ा है। २—भूरिभारः अब यह विचार उपस्थित होता है कि उस चक्र का रथ भूरि-भार क्यों कहलाता है इसका उत्तर विस्पष्ट है कि जिस चक्र के ऊपर सम्पूर्ण भुवन स्थित हों वह अवश्य ही भूरिभार होगा।

यहां वास्तविक भार तो नहीं है किन्तु आकर्षणरूप भारही इसे ऊपर अधिक है। इसलिये यह आलंकारिक वर्णन है। इतने भार रहने पर भी वह अक्ष न पीड़ित होता है न टूटता है क्योंकि वह सनातन है। ३—सनाभिः बन्धनार्थक णह धातु से नाभि बनता है जैसे इस मानव शरीर का नाभि सम्पूर्ण शरीर को बान्धने वाला है वैसे ही वह सूर्य का चक्र पृथिवी आदि लोक लोकान्तरों को बान्धने वाला है। इसलिये सनाभि पद यहां कहा गया है। अब यह स्वभावतः प्रश्न होता है क्या सूर्य कोई चेतन देव है ? क्या सूर्य को ऋषिगण चेतन देव मानते थे ? जो अपने हाथ में रस्सी लेकर सब लोक लोकान्तरों को बांधे हुए है। वे ऋषियों के भाव नहीं जानते अथवा ऋषियों के ऊपर कलंक लगा रहे हैं जो कहते हैं कि ऋषिगण सूर्यादिकों को चेतन मानते थे। वेद में पृथिवी के समान ही सूर्य एक जड़ पदार्थ माना गया है। इस अवस्था में पुनः शंका होती है कि सूर्य किस प्रकार से सर्व लोकों को बांधे हुए है इसका उत्तर केवल यही हो सकता है कि अपनी आकर्षणशक्ति की द्वारा सूर्य अपने परितः स्थित भुवनों को यथाअवकाश में बांधे हुए स्थित है पुनः आगे की ऋचा से और भी विस्पष्ट हो जायगा। यथा

इरावती धेनुमती हि भूतं सूयवसिनी मनुषे दशस्या। व्यस्तभ्ना रोदसी विष्णवेते दाधर्थ पृथिवीमभितो मयूखैः ॥ ७। ९९। ३

प्रथम इसमें द्यावापृथिवी सम्बोधित हुई हैं हे द्यावापृथिवी आप दोनों (मनुषे) मननकर्त्ता जीव को (दशस्या) सब

दान देने हारी हैं (इरावती) आप दोनों ही धनवान् (धेनुमती) गोमान् (सूयवसिनी) और शोभनधनधान्योपत (भूतम्) होवें। इतना कहके अब आगे सूर्य और पृथिवी का सम्बन्ध दिखलाते हैं (विष्णो) हे सूर्य ! आप (एते+रोदसी) इस द्युलोक और पृथिवी लोक को (व्यस्तभ्नाः) विविध प्रकार से रोके हुए हैं और (पृथिवीम्) पृथिवी को (अभितः) चारों तरफ से (मयूखैः) किरणों द्वारा (दाधर्थ) पकड़े हुए हैं।
१—**रोदसी** द्यावापृथिवी का नाम है, जो रोकने हारी हों वे रोदसी अर्थात् रोधसी। व्यस्तभ्नाः=वि+अस्तभ्नाः। इस ऋचा से अनेक वार्ताएं निःसृत होती हैं। प्रथम रोदसी कहने से सिद्ध है कि यह पृथिवी और द्युलोक भी रोधसी है अर्थात् अपनी ओर आकर्षण करने वाली है। २—**विष्णु** यह नाम सूर्य का है जब दोनों लोकों का सूर्य धारण करने हारा है तब इससे परिणाम यह निकलता है कि इसके परितः स्थित दोनों लोक छोटे और यह सूर्य वहुत बड़ा है इस अवस्था में जो यह कहते हैं कि सूर्य ही पृथिवी की परिक्रमा करता है यह कितनी बड़ी भूल है क्या एक सरसो की परिक्रमा पर्व्वत करेगा ?। ३—**मयूखैः** सूर्य अपने किरणों से पृथिवी को धारण किए हुए है इसका क्या भाव होगा। बहुत आदमी कहेंगे कि पृथिवी के ऊपर सूर्य किरण पड़ता रहता है इसी से पृथिवी का धारण पोषण होता है अन्यथा पृथिवी किसी काम की न होती। परन्तु यह बात नहीं यहां दाधर्थ पदसे धारणार्थ सिद्ध होता है जैसे कोई बैलको रस्सी से पकड़े। अब विचारना चाहिये कि-पृथिवी को सूर्य किस

शक्ति से पकड़े हुए है निःसन्देह वह आकर्षणशक्ति है जि
के द्वारा अपने परितःस्थित अनेक लोकों को पकड़े हुए य
महान् सूर्य स्थित है । पुनः—

अनड्वान् दाधार पृथिवी मुत द्या मनड्वान् दा धारोर्वन्तरिक्षम् । अनड्वान् दाधार प्रदिशः षडु र्वी रनड्वान् विश्वं भुवन माविवेश । अथर्व ४।११।

(अनड्वान्) यह सूर्य (पृथिवीम्+दाधार) पृथिवी को पकड़े हुए है (अनड्वान्+उत+द्याम्+उरु अन्तरिक्षम्) सू द्युलोक और विस्तीर्ण अन्तरिक्ष को (दाधार) पकड़े हुए है (अनड्वान्+प्रदिशः+दाधार) अनड्वान् सब दिशाओं को पकड़े हुए है (अनड्वान+षड्+उर्वीः) अनड्वान् अन्यान्य छ पृथिवियों को पकड़े हुए है (विश्वम्+भुवनम्+आविवेश) य अनड्वान् सर्वत्र आविष्ट है ।

यह अथर्ववेद की ऋचा अनेक वार्ताएं विस्पष्ट रूप से निरूपण करती है इस में साफ है कि पृथिवी और द्युलो का धारण कर्ता सूर्य है और षड्+उर्वी=उर्वी नाम पृथिवी क है । बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, अन्यान्य दो लोक और पृथिवी इन सबका सूर्य ही आकर्षण से धारण करता है यह सिद्ध हुआ।

अनड्वान्—बहुत आदमी शङ्का करेंगे कि बैल को अनड्वा कहते हैं इस से तो पौराणिक सिद्धान्त ही सिद्ध होता है कि पृथिवी को कोई बैल अपनी सींग पर रक्खे हुए है । उत्तर— यह भ्रम वेदों के न देखने से उत्पन्न हुआ है । यहां ही द्वितीय ऋचा ४ । ११ । में "अनड्वा निन्द्रः" पद है यहां अन

इ्वान् नाम इन्द्र अर्थात् सूर्य का है। प्रायः ऐसे २ स्थलों में जहां २ वृषभ (बैल) वाचक शब्द आए हैं वे २ सूर्य वाचक हैं। एक ही उदाहरण से विशद होगा।

सहस्रशृङ्गो वृषभो यः समुद्रादुदाचरत्। अथर्व ४। ५। १

सहस्र सींगवाला बैल जो समुद्र से ऊपर आता है। इस ऋचा में देखते हैं कि सहस्रशृङ्ग वृषभ कहागया है। निःसन्देह सहस्र सींगवाला बैल सूर्य ही है। किरण ही इसके हजारों सींग हैं समुद्र शब्द आकाश वाची है। निघण्टु और निरुक्त देखिये।

चन्द्रमा।

अब आकर्षण आदि विषय अधिक वर्णित हो चुके मेरे अन्यान्य ग्रन्थ देखिये। अब कुछ चन्द्र के सम्बन्ध में वक्तव्य है इस सम्बन्ध में भी धर्म्मग्रन्थ बहुत ही मिथ्याबात बतलाते हैं। १—यह चन्द्र अमृतमय है उस अमृत को देवता और पितृगण पी लेते हैं इसी कारण यह घटता बढ़ता रहता है। पुराणों का गप्प तो यह है ही परन्तु महाकवि कालिदास भी इसी असम्भव का वर्णन करते हैं—

पर्य्यायपीतस्य सुरैर्हिमांशोः कलाक्षयः श्लाघ्यतरोहि वृद्धेः।

२—कोई कहते हैं कि इस चन्द्रमा के गोद में एक हरिण बैठा है इसी से इसमें लांछन दीखता है और इसी कारण

इसको मृगाङ्क शशी आदि नामों से पुकारते हैं। ३—यह अत्रि ऋषि के नयन से उत्पन्न हुआ है। कोई कहते हैं कि यह समुद्र से उत्पन्न हुआ। ४—पुराण कहते हैं कि दक्ष की आश्विनी, भरणी आदि २७ सत्ताईस कन्याओं से चन्द्रमा का विवाह है वे ही २७ नक्षत्र हैं। ५—यह सूर्य से भी ऊपर स्थित है। ६-इसी से चन्द्रवंश की उत्पत्ति है। ७—राहु इसको ग्रसता है अतः चन्द्रग्रहण होता है इत्यादि अनेक गप्प चन्द्र के विषय में कहे जाते हैं। यहां मैं संक्षेप से वेद के मन्त्र उद्धृत कर बतलाऊंगा कि वेद भगवान् इस विषय को किस दृष्टि से देखते हैं।

चन्द्रमा में प्रकाश

अथाऽप्यस्यैको रश्मिश्चन्द्रमसं प्रति दीप्यते तदेतेनोपेक्षितव्य मादित्यतोऽस्य दीप्तिर्भवति। निरुक्त २।७।

यास्काचार्य कहते हैं कि सूर्य का एक किरण चन्द्रमा के ऊपर सदा पड़ता रहता है इससे यह जानना चाहिये कि चन्द्रमा का प्रकाश सूर्य से होता है। पृथिवी के समान ही चन्द्रमा भी निस्तेज और अन्धकारमय है जैसे पृथिवी के ऊपर जिस २ भाग में सूर्य का किरण पड़ता रहता है वहां २ दिन होता है इसी प्रकार चन्द्रमा के ऊपर भी सूर्य का किरण पड़ता रहता है अतः इसमें प्रकाश मालूम होता है यदि सूर्य का किरण न पड़ता तो चन्द्र सदा धुंधला प्रतीत होता। इस अतिगहन विज्ञान का भी वेद में विविध प्रकार से वर्णन हैं यास्काचार्य ने

वेद का ही आशय लेकर उपर्युक्तार्थ प्रकट किया है और यहां ही एक दो और प्रमाण देकर इसको बहुत पुष्ट किया है।

अत्राह गोरमन्वत नाम त्वष्टु रपीच्यम् । इत्था चन्द्रमसो गृहे ॥ ऋ० १ । ८४ । १५

(गोः) गमनशील (चन्द्रमसः) चन्द्रमा के (अत्र+ह+गृहे) इसी गृह में (त्वष्टुः) सूर्य का (नाम) सुप्रसिद्ध ज्योति (इत्था) इस प्रकार (अपीच्यम्) अन्तर्हित अर्थात् छिपा हुआ रहता है । यह ऋचा सर्व सन्देह को दूर कर देती है । चन्द्रमा के गृह में सूर्य का प्रकाश छिपा हुआ है इस वर्णन से तो विस्पष्ट सिद्ध है कि सूर्य के प्रकाश से ही चन्द्र प्रकाशित है पुनः इसी अर्थ को अन्य प्रकार से वेद भगवान् निरूपण करते हैं वह यह है—

सोमो वधूयुरभव दश्विनास्तामुभा वरा । सूर्य्यां यत्पत्ये शंसन्तीं मनसा सविताऽददात् ॥ ऋ० १० । ८५ । ९ ।

सूर्य्य की कन्या से चन्द्रमा के विवाह का वर्णन यहां अलंकार रूप से किया गया है । सूर्य की प्रभा ही मानों सूर्यकन्या है । अथ मन्त्रार्थ— (सोमः) चन्द्रमा (वधूयुः) वधूकी इच्छा-वाला हुआ अर्थात् चन्द्रमा ने विवाह करने की इच्छा की । (उभौ+अश्विनौ+वरौ+आस्ताम्) इस बराती में अश्वी अर्थात् दिन और रात्रि देव बरात हुए। (यद्) जब (मनसा) मन के परम अनुराग से (पत्ये+शंसन्तीम्+सूर्य्याम्) पति के लिये

चाह करती हुई सूर्या (अपनी कन्या को) सूर्य ने देखा तब (सविता+अददात्) सूर्य ने चन्द्र की अधीन सूर्या को कर दिया। इस आलंकारिक वर्णन से विशद हो जाता है कि चन्द्रमा का प्रकाश सूर्य से हुआ करता है। यह विषय भारत देश में इतना प्रसिद्ध होगया था कि घर २ इसको लोग जानते थे। काव्य नाटकों में भी इसकी चर्चा होने लगी। जो विषय अतिप्रासिद्ध हो जाता है उसी का निरूपण कविगण अपने काव्यादि ग्रन्थों में किया करते हैं। कालिदास पौराणिक समय के विद्वान् थे अतः अपने काव्यों को वैदिक और लौकिक दोनों सिद्धान्तों से भूषित किया है जैसे पौराणिक गप्प लेकर कालिदासजीने कहा हैं कि देव और पितर चन्द्र का अमृत पीते रहते हैं अतः चन्द्र की कला घटती बढ़ती रहती है वैसे ही वैदिक अर्थ को लेकर कहते हैं कि सूर्य के प्रकाश से चन्द्र प्रकाशित होता है यथा—

पितुः प्रयत्नात् स समग्रसम्पदः शुभैः शरीरावयवैर्दिनेदिने। पुपोष वृद्धिं हरिदश्वदीधितेरनुप्रवेशादिव बालचन्द्रमाः। रघुवंश ३। २२

सम्पूर्णधनधान्य युक्त पिता के प्रयत्न से वह रघु दिन २ शरीर के शुभ अवयवों से बढ़ने लगे जैसे (बालचन्द्रमाः) छोटा चन्द्रमा (हरिदश्वदीधितेः) सूर्य के (अनुप्रवेशात्) अनुप्रवेश से शुक्ल पक्ष में दिन २ बढ़ता जाता है।

चन्द्र में कलङ्क ।

अब इस बात को अच्छे प्रकार समझ सकते हैं कि लोक चन्द्रमा में कलङ्क क्यों मानते हैं । कारण इसका यह है कि जिस प्रकाशमय रूप को चन्द्रमा जगत में दिखला रहा है वह उसका अपना रूप नहीं है । जैसे कोई महादरिद्र धूर्त नर दूसरे से कपड़े मँगनीकर और उन्हे पहिन लोक में अपने को धनिक कहे तो उसको सब कोई कलङ्क ही देगा और उसको धूर्त ही कहेगा इसी प्रकार ज्योतिरहित चन्द्रमा में दूसरे का ज्योति देख लोग कहने लग गए कि चन्द्र में कलङ्क है । धीरे २ जब इस विज्ञान को लोग भूलते गए तब इसको अनेक प्रकार से कल्पना करने लगे । किन्होंने कहा कि इसमें मृगरहता है इसहेतु कालिमा दीखता है । किन्हों ने कहा कि यह समुद्र से उत्पन्न हुआ है और समुद्र में विष भी रहा करता था अतः इन दोनों के संयोग होने में चन्द्रमा का बहुत सा हिस्सा कृष्ण (काला) प्रतीत होता है । कोई पौराणिक यह कहते हैं कि गुरुपत्नी तारा के साथ व्यभिचार करने से चन्द्र लाञ्छित माना गया है इस तरह चन्द्र के सम्बन्ध में विविध कल्पनाएं देशमें प्रचलित हैं वे सब ही मिथ्या हैं ।

मृगाङ्क शशी—मृगाङ्क चन्द्र क्यों कहाता है इसका भी यथार्थ कारण यह था कि मृग नाम भी सूर्य का है । वह सूर्य अपने किरणद्वारा चन्द्र के गोद में रहता है अतः चन्द्र के नाम मृगाङ्क और शशी आदि हुए हैं ।

चन्द्र और २७ नक्षत्र ।

चन्द्रमा लौकिक भाषा में नक्षत्रेश, नक्षत्रस्वामी कहाता है। वे नक्षत्र २७ वा २८ माने गए हैं । असली वात यह थी कि पृथिवी की पूरी परिक्रमा चन्द्रमा करीव २८ दिन में समाप्त करता है । एक दिन में वह जितना चलता उतने मार्ग का नाम अश्विनी, द्वितीय दिन के मार्ग का नाम भरणी इसी प्रकार २८ दिन के मार्ग के नाम २८ हैं यहां विचारना चाहिये कि आकाश में तो अगणित नक्षत्र हैं पुनः इन २८ नक्षत्रों की ही चर्चा अपने शास्त्र में इतनी क्यों है इस का अवश्य कोई विशेष कारण होना चाहिये । वैदिक समय में विज्ञान की उत्तरोत्तर वृद्धि होती रहती थी इस हेतु पृथिवी, सूर्य और चन्द्र आदि कों की सव दशा से लोग परिचित थे। उस समय के विद्वानों ने स्थिर किया कि यह चन्द्रमा भी पृथिवी की परिक्रमा कर रहा है वह करीव २८ दिन में पूर्ण होती है। गणित के लिये इन २८ दिनों के पृथक् २ नाम रक्खे गये। यह भी आप को मालूम हो कि अपने यहां चन्द्रमास का व्यवहार अधिक किया गया है । विविधयज्ञ चन्द्रमास के अनुसार ही किया करते थे । दर्शेष्टि और पूर्णमासेष्टि आति प्रसिद्ध है । प्रतिपद् द्वितीया, तृतिया आदि भी इसी के अनुसार है। चैत्र, बैशाख, ज्येष्ठ आदि मासों की गणना इसी के अधीन है। शतपथ ब्राह्मण में नक्षत्रानुसार यज्ञकरने की विधि विस्तार से वर्णित है । विज्ञान से सम्बन्ध रखने के कारण ये २८ नक्षत्र

अधिक प्रसिद्ध हुए। लोगों को आश्चर्य मालूम होता था कि अहो ईश्वर की कैसी विभूतियां हैं कि यह विस्तीर्ण पृथिवी सूर्य की परिक्रमा कर रही है और उस की भी परिक्रमा चन्द्र कर रहा है॥ पश्चात् जब भारत वासी इस वैदिक विज्ञान को भूल गए तो इन नक्षत्रों की बड़ी दुर्दशा हुई। नक्षत्रसूची ज्योतिषियों की तो इन से पूरी कमाई होने लगी। पौराणिकों ने इन्हें चन्द्र की स्त्री मानलीं किन्हीं आचार्य्यों ने आकाशस्थ ताराओं को ही २८ नक्षत्र समझा। क्या ही आश्चर्य की बात है क्या था और क्या हो गया। भारत वासियो! देखो! तुम्हारे पूर्वजों ने कितने परिश्रम से इन विज्ञानों का उपार्जन किया था किन्तु तुम ऐसे कुपुत्र हुए कि इन को सर्वथा भ्रष्ट कर निश्चिन्त हो रहे हो।

२८ नक्षत्रों के नाम--अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेशा, मघा, पूर्वाफल्गुनी, उत्तराफल्गुनी हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूला, पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढ़ा, श्रवणा, धनिष्ठा, शतभिषा पूर्वभाद्रपदा, उत्तरभाद्रपदा, रेवती,। ये २७ नक्षत्र है २८ वां अभिजित् भी माना जाता है।

वेद और नक्षत्र।

चित्राणि साकं दिवि रोचनानि सरीसृपाणि भुवने जवानि। अष्टाविंशं सुमतिमिच्छमानो अहानि गीर्भिः सपर्यामि नाकम्॥ १॥ सुहवं मे

कृत्तिका रोहिणी चास्तु भद्रं मृगशिरः समार्द्रा । पुनर्वसू सूनृता चारु पुष्यो भानुराश्लेषा अयनं मघा मे ॥ २ ॥ पुण्यं पूर्वा फल्गुन्यौ चात्र हस्तश्चित्रा शिवा स्वातिः सुखोमे अस्तु । राधो विशाखे सुहवानुराधा ज्येष्ठासु नक्षत्रमरिष्टं मूलम् ॥ ३ ॥ अन्नं पूर्वा रासन्ता मे अषाढ़ा ऊर्जं देव्युत्तर आ वहन्तु । अभिजिन्मे रासतां पुण्यमेव श्रवणः श्रविष्ठा कुर्वतां सुपुष्टिम् ॥ ४ ॥ आ मे महच्छतभिषग्वरीय आ मे द्वया प्रोष्ठपदा सुशर्म । आ रेवती चाश्वयुजौ भगंम आमेरयिं भरण्य आ वहन्तु ॥ ५ ॥ अथर्व । १९ । ७ ॥

यहां यह भी कहा गया है कि—

अष्टाविंशानि शिवानि शग्मानि सह योगं भजन्तुमे । अथर्व । १९ । ८ । २

इन २८ नक्षत्रों के विशेषण में शग्मपद आया है । शग्म-नाम कल्पित मार्ग का ही है । जिस मार्ग से चन्द्र परिक्रमा कर रहा है उसी का नाम शग्म है । जो नक्षत्र केवल चन्द्रमार्ग सूचक थे क्या आश्चर्य है आज अज्ञानियों के शुभाशुभ फलप्रद और धूर्तों के कमाखाने के साधन बन गए ।

ग्रहण ।

सिद्धान्तशिरोमणि आदि ग्रन्थों में ग्रहण का विषय विस्तार से वर्णित है । पृथिवी की छाया से चन्द्रग्रहण और चंद्र की छाया से सूर्यग्रहण होता है यह बात आजकल स्कूलों का एक

छोटा बच्चा भी जानता है। इसके लक्ष्य में कालिदास ने एक अच्छी उपमा दी है वह यह है—

अवैमि चैनामनघेति किन्तु लोकापवादो बलवान् मतोमे। छाया हि भूमेः शशिनो मलत्वेनारोपिता शुद्धिमतः प्रजाभिः॥ रघुवंश। १४। ४०

रामचंद्र कहते हैं कि यद्यपि मैं जानता हूं कि यह सीता निष्पापा है तथापि लोकापवाद बलवान् है यह मुझे भी मानना चाहिये। यद्यपि यह चंद्रमा शुद्ध है इसके ऊपर केवल पृथिवी की छाया पड़ती है। किंतु प्रजा इसी छाया को चंद्र का कलंक मानती है। वह चंद्र का कलंक अब नहीं मिटता, इससे भी यही सिद्ध है कि पृथिवी की छाया से ग्रहण लगता है।

चन्द्रमा का घटना बढ़ना।

सूर्य का किरण चंद्रमा पर सर्वदा पड़ता रहता है। पृथिवी घूमती है अतः पृथिवीस्थ पुरुष चंद्रमा को सदा प्रकाशित नहीं देखता क्योंकि पृथिवी की छाया चन्द्र में पड़जाने से हम लोगों को प्रकाश प्रतीत नहीं होता।

वेद और ग्रहण।

वेदों में कुछ संदिग्ध सा वर्णन आया है जिससे राहु-केतु की कथा चली है और इसको न समझ कर राहुकृत ग्रहण लोग मानने लगे मैं उन मन्त्रों को यहां उद्धृत करता हूं।

यत्त्वा सूर्य स्वर्भानुस्तमसा विध्यदासुरः। अक्षे-त्रविद् यथा मुग्धो भुवनान्यदीधयुः॥ ऋ० ५।४०।५

(सूर्य) हे सूर्य ! (यद्) जब (त्वा) तुमको (आसुरः) असुरपुत्र (स्वर्भानुः) स्वर्भानु (तमसा) अन्धकार से (अवि-ध्यत्) विद्ध अर्थात् आच्छादित कर लेता है तो उस समय (भुवनानि) सम्पूर्ण भुवन पागल से (अदीधयुः) दीख पड़ने लगते (यथा) जैसे (अक्षेत्रवित्) मार्ग को न जानने हारा पथिक (मुग्धः) मुग्ध अर्थात् घबरा जाता है तद्वत् सम्पूर्ण जगत घबरा जाता है ।

यं वै सूर्य स्वर्भानु स्तमसा विध्यदासुरः । अत्र-य स्तमन्वविन्दन्नह्यन्ये अशक्नुवन् ॥ ऋ० ५।४०।९

(आसुरः+स्वर्भानुः) आसुर स्वर्भानु (यम्+वै+सूर्यम्) जिस सूर्य को (तमसा+अविध्यत्) अन्धकार से घेर लेता है (अत्रयः) अत्रिगण (तम्+अनु+अविन्दन्) उसको पालते हैं तमको नष्टकर अत्रि सूर्य की रक्षा कर प्राप्त करते हैं यहां अन्यान्य ऋचाओं में भी इस प्रकार का वर्णन आया है, ब्राह्मण ग्रन्थों में भी इसकी बहुधा चर्चा आती है केवल एक उदाहरण शतपथ ब्राह्मण से देकर इसका तात्पर्य लिखूंगा—

स्वर्भानुर्ह वा आसुरः सूर्य तमसा विव्याध स तमसा विद्धो न व्यरोचत तस्य सोमारुद्रा-वेवैतत्तमोऽपाहतां स एषोऽपहतपाप्मा तपति शत० ५।१।२।१।

तात्पर्य—असुर शब्द ।

ऋग्वेद में असुरशब्द दुष्ट अर्थ में बहुत ही विरलप्रयुक्त हुआ है । सूर्य, मेघ, वायु, वीर, परमात्मा आदि अनेक अर्थों में यह असुरशब्द विद्यमान है ।

वि सुपर्णो अन्तरिक्षाण्यख्यद् गभीरवेपा असुरः सुनीथः । क्वेदानीं सूयः कश्चिकेत कतमां द्यां रश्मि रस्याततान । ऋ० १ । ३५ । ७

यहां पर सूर्य के विशेषण में असुर शब्द आया है । जिस कारण सूर्य के प्रकाश से चन्द्र प्रकाशित होता रहता है अतः (असुरस्य सूयर्स्य अयमासुरः) असुर जो सूर्य उसका सम्बन्धी होने से चन्द्र आसुर काहता है ।

स्वर्भानु—स्व=स्वर्ग आकाश, अन्तरिक्ष । भानु=प्रकाश । स्वर्ग का प्रकाश करने हारा चन्द्र है अतः इसको स्वर्भानु कहते हैं ।

अत्रि—सूर्य किरणों का नाम अत्रि है । "अदन्ति जलानि ये तेऽत्रयः किरणाः"

अब वैदिकार्थ पर ध्यान दीजिये वेद में कहा गया है कि "आसुर स्वर्भानु सूर्य को अन्धकार से ढांक लेता है" । ठीक है । आसुर स्वर्भानु जो चन्द्र वह अपनी छायारूप अन्धकार से सूर्य को ढांक लेता है तब पुनः अत्रि अर्थात् सूर्य किरण ही इसको हटाकर सूर्य की, मानो, रक्षा करता है । शतपथब्राह्मण

कहता है कि सोम और रुद्र इस तम को विनष्ट करता है। यह भी ठीक है क्योंकि चन्द्र ही अपनी छाया सूर्य पर डालता है और कुछ देर के पश्चात् वहांसे दूर हट जाता है। रुद्रनाम विद्युत् का है अर्थात् प्रकाश पुनः आजाता है। यही, मानो, सूर्य का तम से छूटना हैं, वेद की यह एक बहुत साधारण बात थी इसे न समझ कैसी २ कल्पनाएं होती गईं।

आधुनिक संस्कृत में " तमस्तु राहुः स्वर्भानुः सैंहिकेयो विधुन्तुदः " अमर। स्वर्भानु राहुको कहते हैं असुर एक भिन्न-जाति मानी जाती है अतः इस प्रकार का महाभ्रम उत्पन्न हुआ है। मैं बारम्बार कह चुका हूं कि वेदों की एक छोटीसी बात लेकर बड़ी २ गाथाएं बनाते गए इसलिये उचित है कि लोग वेदों को पढ़ें पढ़ावे अन्यथा वे कुसंस्कारों से कदापि न छूट सकेगें।

ग्रहण क्या है।

चन्द्र ग्रहण में सम्पूर्ण चन्द्रमण्डल दीख पड़ता है किन्तु मण्डलके ऊपर काली और लाल छाया रहती है। कभी सम्पूर्ण मण्डलके ऊपर और कभी उसके कुछ भाग के ऊपर वह छाया रहती है। सूर्य्यग्रहण इससे विलक्षण होता है। सूर्य्यमण्डल अधिक वा स्वल्प भाग उस समय छिपा हुआ रहता है

ग्रहण दो प्रकारके होते हैं। १—जिनमें सूर्य और चन्द्रके मण्डल का कुछभाग ही छाया ऽऽच्छादित होता है वह **भाग-ग्रास वा असम्पूर्णग्रास** कहाता हैं। लोग उसको उतना

ही अनुभव करते हैं जितना मेघ से वे दोनों सूर्य और चन्द्र छिप जांय। २—सम्पूर्ण ग्रास में सम्पूर्ण सूर्य और चन्द्र आच्छादित होजाता हैं। सूर्य के सम्पूर्ण ग्रास के समय पृथिवी के ऊपर आश्चर्य जनक लीला होता है। पृथिवी के ऊपर उस समय एक विचित्र अन्धकार हो जाता है। न तो रात्रि के समान ही वह अन्धकार है और न उषा काल के समान प्रकाश और अन्धकार युक्त ही है। आकाश में तारांएं दीख पड़ने लगती हैं। पक्षिगण अपने घोसले की ओर दौड़ते हैं। रात्रिञ्चर पशु पक्षी रात्रि समझ कर बाहर निकलने लगते हैं। अज्ञानी जन डर जाते हैं। बहुत दिनों की बात है कि दो देशों के मध्य घोर संग्राम हो रहा था उसी समय सूर्यग्रहण लगा। दोनों दलोंके सिपाही इतने डरगए कि युद्ध बन्द कर दिया गया और दोनों दलों में सन्धि हो गई। सूर्य के समग्र ग्रास से आज कलभी अज्ञानी जनों में अधिक भय उत्पन्न होता है। वे समझते हैं कि इससे किसी महान् राजा की मृत्यु होगी महा दुर्भिक्ष, अनावृष्टि अतिवृष्टि, महामारी, भयंकरयुद्ध, भूकम्प, आदि उपद्रव इसवर्ष होंगे किन्तु ये सब मिथ्या बातें हैं। ग्रहण से मृत्यु और दुर्भिक्षादिकों का कोई भी सम्बन्ध नहीं है।

नाना कल्पनाएं।

जिन देशों में ग्रहण के तत्व नहीं जानते थे वहां इसके सम्बन्ध में विविध कल्पनाएं लोग किया करते थे १—प्राचीन काल के रोमनिवासी चन्द्रमा को एक देवी समझते थे जब

चन्द्र ग्रहण होता था तब वे मानते थे कि इस समय चन्द्रदेवी अपने बच्चे के साथ परिश्रम कर रही है। इसकी सहायता के लिये वे चन्द्रदेवी के नाम पर बलि दिया करते थे उन में से कोई मानते थे कि कोई जादूगर अपनी जादू से चन्द्रदेवी को क्लेश पहुंचा रहा है इस हेतु यह काली होगई है इत्यादि।

२—अमेरिका के कुछ मनुष्य मानते थे कि जब २ चन्द्रमा बीमार हो जाता है तब २ ग्रहण लगता है उनको इससे अधिक भय होता था कि ऐसा न हो कि वह हम लोगों के ऊपर गिर कर नष्ट करदे। इस आपत्ति से बचने के लिये और चन्द्रमा को जगाने के लिये बड़े २ ढोल पीटा करते थे। कुत्तों को मार २ कर भौंकाते थे स्वयं अपने बड़े जोर से चिल्लाया करते थे। उसके नैरोग्य के लिये देवताओं से प्रार्थनाएं करते थे।

३—अमेरिका के मेकसिको-देशनिवासी समझते थे कि चन्द्रमा और सूर्य में कभी २ तुमुल संग्राम हो जाता है। चन्द्रमा हार जाता है उस को बड़ी चोट लगजाती है इसी लिये इसकी ऐसी दशा होती है। वहां के लोग ग्रहण के समय उपवास किया करते थे। स्त्रियां डर कर अपने देहको ही पीटने लगती थीं। कुमारिकाएं अपने वाहु में से रक्त निकालने लगती थीं। छोटे २ बच्चे रोने लगते थे।

४—अफ्रिका देश अभीतक महान्धकार में हैं। वहां के लोग निग्रो (हबसी) कहलाते हैं। वे जंगली अतिमूर्ख पशुवत् हैं। बहुत सी जातियां अभी तक कपड़ा पहिनना भी नहीं

जानती हैं । वहां कोई एक यात्रिक चन्द्रग्रहण के समय उपस्थित था वह इसका प्रभाव इस प्रकार वर्णन करता है । एक दिन सन्ध्या समय शीतल वायु चल रही थी । लोग बड़े आनन्द से इधर उधर मैदान में हवा खा रहे थे । चन्द्रमा के पूर्ण और स्वच्छ प्रकाश से और भी लोग बहुत प्रमुदित हो रहे थे । इतने में ही चन्द्र कुछ २ काला होना शुरू हुआ । धीरे २ सर्वग्रास होगया । ज्यों २ चन्द्र काला पड़ता जाता था त्यों २ आनन्द घटता जाता था, भय और घबराहट बढ़ती जाती थी। सर्वग्रास के समय लोग बहुत घबराकर इतस्ततः दौड़ने लगे। सैकड़ों पुरुष वहां के राजा के निकट दौड़ गए और कहने लगे कि यह आकाश में क्या हो रहा है । इस समय मेघ भी नहीं जिससे चद्रमा छिप जाय वे एक दूसरे के मुख अचंभा से देखने लगे कि इस समय क्या आफत हम लोगों के ऊपर आवेंगी । वे ग्रहण के तत्त्व नहीं जानते थे इसलिये इस प्रकार आकुल व्याकुल हो रहे थे । बहुत आदमी बहुत जोर से चिल्लाने लगे । कोई डंकाओंको पीटने लगे कोई तुरही फूंकने लगे । वे मानते थे कि कोई महान् सांप आके चन्द्रमा को पकड़ लेता है । इस लिये यहां से इस असुर को डरादेना चाहिये ताकि वह चन्द्र को छोड़ कर भाग जाय । इसी अभिप्राय से वे डंका बजाना, सब कोई मिलकर हल्ला मचाना, तुरही फूंकना आदि काम जरूरी समझते थे । जब धीरे २ पुनः चन्द्रमा स्वच्छ होने लगा तब वे निग्रो (हबसी) बड़ी खुशी मना २ कर अपने पुरुषार्थ की प्रशंसा करने लगे ।

५—शोक की बात है कि जिनके पूर्वज अच्छे प्रकार ग्रहण
तत्त्व जानते थे वे भी भारतवासी इनहीं जंगलियों के समान
ग्रहण मानने लगे। आश्चर्य यह है कि यहां एक ओर ज्योतिष-
शास्त्र चिल्ला २ कर कह रहा है कि पृथिवी की छाया से चन्द्र
ग्रहण और चन्द्र की छाया से सूर्य ग्रहण होता है । न कोई
असुर न कोई सांप और न कोई अन्य पदार्थ ही चन्द्र-सूर्य
को क्लेश पहुंचा सकता है। चन्द्र-सूर्य एक जड़ पदार्थ है। प्रति-
दिन छायाकृत ग्रहण रहता ही है इसी कारण चन्द्रमा बढ़ता
और घटता है। मेघ के आने से जैसा चन्द्रमा और सूर्य छिपा सा
प्रतीत होता है। वैसाही ग्रहण भी समझो। ग्रहण के कारण
कदापि भी महामारी आदि उपद्रव नहीं होते इत्यादि विस्पष्ट
और सत्य बात ज्योतिषशास्त्र बतला रहा है वह शास्त्र पढ़ाया
भी जा रहा है किन्तु दूसरी ओर मूर्खता की ऐसी धारा चल
रही है कि जिसका वर्णन महाकवि भी नहीं कर सकते । ग्रहण
के समय हजारों लाखों आदमी काशी, प्रयाग और कुरुक्षेत्र
आदिक तीर्थों की ओर दौड़ते हैं। राहु नाम के असुर से चन्द्र
सूर्य को बचाने के हेतु कोई जप कोई दान कोई पूजा करता है
इस समय को अशुभ समझ कोई स्नान करता कोई समझता है
कि यदि ग्रहण के समय काशी, गंगा वा कुरुक्षेत्र में स्नान हो
गया तो मुक्ति साक्षात् हाथ में ही रक्खी हुई है। डोम और
भंगी जोर २ से चिल्ला २ कर कहते हैं कि ग्रहण लग गया
दान पुण्य करो इत्यादि विचित्र लीला आज भी भारत में भी
देखते हैं। पुराणों ने यहां की सारी विद्याएं नष्ट भ्रष्ट कर दीं

वे कैसी मूर्खता की कथा गढ़ते हैं—एक समय देव और असुर मिल के समुद्र मथन कर अमृत ले आए। असुरगण अमृत को ले भागने लगे। देवगण वहांही मुंह देखते रह गए। तब विष्णु भगवान् मोहिनी स्त्रीरूप धर असुरों के निकट जा उन्हे मोहित कर उनसे अमृत के घड़े को अपने हाथ में लेके दोनों दलों को बराबर बांट देने की सन्धि कर उन्हें विठला मन में छल रख अमृत बांटने लगे। प्रथम देवलोगों को अमृत देना आरम्भ किया। असुरों में एक राहु विष्णु के कपट-व्यवहार से परिचित था अतः वह सूर्य और चन्द्र के बीच में आके बैठ गया था। ज्योंही विष्णु उस राहु को अमृत देने लगे त्यों ही सूर्य और चन्द्र ने ईशारा किया किन्तु कुछ अमृत इसके हाथ पर गिर चुका था और उसको उसने पी भी लिया। विष्णु ने उसे असुर जान चक्र से इसका शिर काट लिया। वह राहु और केतु दो हो गया। तब से ही वे दोनों अपने बैरी सूर्य चन्द्र को पीड़ा समय २ पर दिया करते हैं। इसी लिये ग्रहण होता है। यह पौराणिक गप्प है।

६—बौद्ध सम्प्रदायी भी पौराणिक ही एक प्रकार से हैं अतः वे भी राहुकृत ही ग्रहण मानते हैं। इनमें चन्द्रप्रीति और सूर्यप्रीति नाम के दो स्तोत्र ग्रहण के समय में पढ़ते हैं। चन्द्रप्रीति में इस प्रकार वर्णन आता है कि एक समय किसी एक स्थान में बुद्धदेवजी समाधिस्थ थे। उसी समय राहु नाम का असुर चन्द्रमा को अपने पेट में निगल ने लगा। चन्द्र बहुत ही दुःखित हुए। बुद्ध को समाधि में देख जोर से पुकार

चन्द्र भगवान् कहने लगे कि मैं आप की शरण में हूं । आ
सब की रक्षा करते हैं मेरी भी आप रक्षा कीजिये । इस कात
शब्द को सुन दयालु बुद्धजी ने राहु से कहा कि तू यहां
चन्द्र को छोड़ भागजा क्योंकि चन्द्र ने मेरी शरण ली है ।
बुद्ध की इतनी बातें सुन चन्द्र को छोड़ डरता कांपता सां
लेता हुआ वह राहु असुराधिपति विप्रचित्ति के निकट भाग क
जा पहुंचा और कहने लगा कि यदि मैं आज चन्द्रमा को न
छोड़ता तो न जाने मेरी क्या दशा होती । बुद्धने मेरा अत्या-
चार देख लिया । सूर्यप्रीति में भी इसी प्रकार की गप्प है ।

७—चीन देश निवासी भी निग्रो (हवसी) हिन्दू और
बौद्ध के समानही समझते थे कि कोई लाल और कृष्ण सांपही
चन्द्र और सूर्य को तंग किया करता है । वे हिन्दू के समान
न तो स्नान करते और न बौद्ध के समान चन्द्रप्रीति आदि
स्तोत्र ही पढ़ते किन्तु आफ्रिका के हवसी के समान सब कोई
मिलकर बड़े जोर से चिल्लाने ढोल बजाने डंका पीटने लगते हैं
ताकि इस शोर से डर कर वह सर्प भाग जाय । इत्यादि भिन्न
देश वासी, अपनी २ कल्पनाएं किया करते हैं ।

ये सर्व कल्पनाएं मिथ्या हैं क्योंकि यद्यपि चन्द्रमा और
सूर्य यहां से देखने में अतिलघु प्रतीत होता है किन्तु चन्द्रमा
भी एक पृथिवी के समान ही लोक है वहां भी जीव निवास
करते हैं । पृथिवी से थोड़ा ही छोटा चन्द्र है । सूर्य की कथाही
क्या । १३००००० तेरह लक्षगुणा सूर्य पृथिवी से बड़ा है ।
वह अग्नि का महासमुद्र है । इस सूर्य के चारों तरफ लाख

कोश में कोई शरीरधारी जीव इसकी ज्वाला से नहीं बच सकता है। यह सम्पूर्ण पृथिवी भी पर्वतसमुद्रादिसहित यदि सूर्य-मण्डल में डाल दी जाय तो एक क्षण में जलकर भाफ होजाय जब ऐसी विस्तृत पृथिवी की वहां पर यह दशा हो तो आप विचार सकते हैं कि सर्प और असुर वहां कैसे पहुंच सकते। अतः राहु आदि की कथा सर्वथा मिथ्या है पुनः जब राहुकृत ग्रहण होता तो नियमपूर्वक पूर्णिमा और अमावस्या तिथिको ही चन्द्र, सूर्य ग्रहण क्यों कर होता। वह चेतन राहु स्वतन्त्र है जब चाहता तबही सूर्य चन्द्र को धर पकड़ता किन्तु सो नहीं होता अतः यह कल्पना मिथ्या है। पुनः विद्वान् गण सैकड़ों वर्ष पहले ही ग्रहणों के मास, तिथि, पल, क्षण, बतला सकते हैं इतना ही नहीं किन्तु किस क्षण में ग्रहण और किस क्षण से मोक्ष होना आरम्भ होगा यह कह सकते हैं तब आप विचार करें कि यदि कोई सर्प वा राहु का यह कार्य होता तो गणित के द्वारा पण्डितगण इस विषय को कैसे कहसकते थे इस हेतु उपर्युक्त समस्त कल्पनाएं मिथ्या होने से त्याज्य हैं।

पृथिवी की छाया चन्द्रमा के ऊपर पड़ती है अतः चन्द्र ग्रहण होता है। इसी हेतु चन्द्रग्रहण ईषद्रक्त सा प्रतीत होता है। चन्द्र की छाया से सूर्य ग्रहण होता है। चन्द्रमा सर्वथा काला है। अतः सूर्यग्रहण काला प्रतीत होता है इसी कारण लाल और कृष्ण सर्प की भी कथा चल पड़ी है।

वर्ष में २ से कम और ७ से अधिक ग्रहण नहीं होसकता साधारणतया वर्ष में ४ चार ग्रहण होते हैं। इति

वेद में विमान की चर्चा ।

विमान एष दिवो मध्य आस्त आपप्रिवान् रोदसी अन्तरिक्षम् । स विश्वाची रभि चष्टे घृताची रन्तरो पूर्वमपरञ्च केतुम् । यजु० १७ । ५९

(दिव:+मध्ये) आकाश के मध्य में (एष:+विमान:आस्ते) यह विमान के समान विद्यमान है (रोदसी+अन्तारिक्षम्) द्युलोक पृथिवी तथा अन्तारिक्ष, मानों, तीनों लोकों में (आपप्रिवान्) अच्छे प्रकार परिपूर्ण होता है अर्थात् तीनों लोकों में इसकी अहत गति है (विश्वाची:) सम्पूर्ण विश्व में गमन करनेहारा (घृताची:) घृत = जल अर्थात् मेघ के ऊपर भी चलने हारा (स:) वह विमानाधिष्ठित पुरुष (पूर्वम्) इस लोक (अपरम्+च) उस परलोक (अन्तरा) इन दोनों के मध्य में विद्यमान(केतुम्) प्रकाश (अभिचष्टे) सब तरह से देखता है ।

यहां मन्त्र में विमानशब्द विस्पष्ट रूप से प्रयुक्त हुआ है इसकी गति का भी वर्णन है तथा इस पर चढ़ने हारे की दशा का भी निरूपण है अत: प्रतीत होता है कि ऋषिगण अपने समय में विमान विद्या भी अच्छे प्रकार जानते थे । एक अति प्राचीन गाथा भी चली आती है कि प्रथम कुवेर का एक विमान था । रावण उसे ले आया था। रामचन्द्र विजय करके जब लङ्का से चले थे तब उसी विमान पर चढ़ कर लङ्का से अयोध्या आए थे ।

सृष्टि-विज्ञान ।

आश्चर्य्य रूप से सृष्टि का वर्णन वेदों में उपलब्ध होता है। वेदों में कथा कहानी नहीं है । अन्यान्य ग्रन्थों के समान वेद ऊटपटांग नहीं बकते । मन्त्रद्रष्टा ऋषि प्रथम इस अति गहन विषय में विविध प्रश्न करते हैं । वेदार्थ-जिज्ञासुओं को और वेदों के प्रेमियों को प्रथम वे प्रश्न जानने चाहियें वे अतिरोचक हैं और उन से ऋषियों के आन्तरिक भाव का पूरा पता लगता। वे मन्त्र हम लोगों को महती जिज्ञासा की ओर लेजाते हैं जिज्ञासा ही ने मनुष्य जाति को इस दशा तक पहुंचाया है जिस देश में खोज नहीं वह मृत है। कभी अपनी उन्नति नहीं कर सकता । मन्त्रद्वारा ऋषिगण क्या २ विलक्षण प्रश्न करते हैं प्रथम उन को ध्यान पूर्वक विचारिये ।

किं स्विदासीदधिष्ठानमारम्भणं कतमत् स्वित् कथासीत् । यतो भूमिं जनयन् विश्वकर्म्मा वि-द्यामौर्णोत् महिना विश्वचक्षाः ॥ ऋ० १०।८१।२

लोक में देखते हैं कि जब कोई कुम्भकार तन्तुवाय वा तक्षा घट, पट, पीढ़ी आदि बनाना चाहता है तब वह पहिले सामग्री लेता है और कहीं एक स्थान में बैठ कर घड़ा आदि पात्र बनाता है । अब जैसे लोक में व्यवहार देखते हैं वैसे ही ईश्वर के भी होने चाहिये । अतः प्रथम विश्वकर्म्मा ऋषि प्रश्न करते हैं कि (स्वित्) वितर्क=मैं वितर्क करता हूं कि

(अधिष्ठानम्) अधिष्ठान अर्थात् बैठने का स्थान (किम्+आसीत्) उस परमात्मा का कौनसा था ? (आरम्भणम्+कतमत्) जिस सामग्री से जगत बनाया है वह आरम्भ करने की सामग्री कौनसी थी (स्वित्) पुनः मैं वितर्क करता हूं (कथा+आसीत्) बनाने की क्रिया कैसी थी (यतः) जिस काल में (विश्वचक्षाः) सर्वद्रष्टा (विश्वकर्मा) सर्वकर्त्ता परमात्मा (भूमिम्+जनयन्) भूमि को (द्याम्) और द्युलोक को उत्पन्न करता हुआ (महिना) अपने महत्त्व से (वि+और्णोत्) सम्पूर्ण जगत को आच्छादित करता है उस समय इसके समीप कौनसी सामग्री और अधिष्ठान था यह एक प्रश्न है । विश्वचक्षाः =विश्व=सब, चक्षा=देखने-हारा । विश्वकर्मा=सर्वकर्ता । पुनः वही ऋषि प्रश्न करते हैं—

किं स्विद् वनं क उ स वृक्ष आस यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः । मनीषिणो मनसा पृच्छतेदु तद्यदध्यतिष्ठद् भुवनानि धारयन् ॥ ऋ० १० । ८१ । ४

लोक में देखते हैं कि वन में से वृक्ष काट अनेक प्रकार के भवन बना लेते हैं । ईश्वर के निकट कौनसा वन है ? (स्वित्) मैं वितर्क करता हूं (किम्+वनम्) कौनसा वन था (कः+उ+सः+वृक्षः+आस) कौनसा वह वृक्ष था (यतः) जिस बन और वृक्ष से (द्यावापृथिवी) द्युलोक और पृथिवी को (निष्टतक्षुः) काटकर बहुत शोभित बनाता है (मनीषिणः) हे मनीषी कविगण ! (मनसा) मन से अच्छे प्रकार विचार (तत्+इत्+उ) उसको भी आप सब पूछें कि (भुवनानि+

धारयन्) सम्पूर्ण जगत को पकड़े हुए वह (यद्+अधि+अति-ष्ठत्) जिसके ऊपर स्थित है। इस ऋचा के द्वारा ऋषि दो प्रश्न करते हैं एक जगत् बनाने की सामग्री कौनसी है और दूसरा सबको बनाकर और पकड़े हुए वह कैसे खड़ा है।

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात्। सं बाहुभ्यां धमति संपतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन्देवएकः। ऋ० १०। ८१। ३

अब स्वयं वेद भगवान् उत्तर देते हैं कि वह परमात्मा (विश्वतश्चक्षुः) सर्वत्र जिसका नेत्र है जो सब देख रहा है (विश्वतोमुखः) सब ओर जिसका मुख है (विश्वतोबाहुः) सर्वत्र जिसका बाहु है (उत) और (विश्वतस्पात्) सर्वत्र जिसका पैर है जो (एकः+देवः) एक महान् देव है वह प्रथम (बाहुभ्याम्) बाहु से (संधमति) सब पदार्थ में गति देता है तब (पतत्रैः) पतनशील व्यापक परमाणुओं से (द्यावा-भूमि) द्युलोक और भूमि को (संजनयन्)उत्पन्न करता हुआ वह एक देव निराधार विद्यमान है। द्वितीय प्रश्न का उत्तर तो यह है कि जब परमात्मा सर्वव्यापक है तब इसके आधार का विचार ही क्या हो सकता है जो एक देशी होता है वह आधार की अपेक्षा करता है। इस दृश्यमान संसार में वह ऊपर नीचे चारों तरफ और अभ्यन्तर जब पूर्ण है। तब यह प्रश्न कैसा ? अब प्रथम प्रश्न का उत्तर यह दिया जाता है कि पतत्र=अर्थात् पतनशील=अतिचञ्चल गतिमान् पदार्थ सदा रहता ही है न

वह कभी उत्पन्न हुआ न होता न होगा वह शाश्वत पदार्थ है उन्ही पतत्र में गति देकर अपनी निरीक्षण यह सारी सृष्टि रचा करता है। इस मन्त्र से सिद्ध है कि परमात्मा इस जगत् का निमित्तकारण है। जीवात्मा और प्रकृति भी नित्य अज वस्तु है इनही दोनों की सहायता से वह ब्रह्म सृष्टि रचा करता है

ईश्वर का अस्तित्व ।

प्रथम यहां शङ्का हो सकती है कि ईश्वर ही कोई वस्तु सिद्ध नहीं होता। इसके उत्तर में बड़े २ शास्त्र हैं यहां केवल दो एक बात पर ध्यान दीजिये। भाव से भाव होता है अर्थात् प्रथम किसी पदार्थ का होना आवश्यक है। उस पदार्थ से अन्य पदार्थ होगा। वह पदार्थ चेतन परम ज्ञानी परमविवेकी होवे क्योंकि परम ज्ञानी ही इस ज्ञानमय जगत को बन सकता है अत कोई परम ज्ञानी पुरुष सदा से विद्यमान है वही परमात्मा ब्रह्म आदि नाम से पुकारा जाता है ईश्वर के अस्तित्व में दूसरा प्रमाण **रचना** है। अपने शास्त्र में "**जन्माद्यस्य यतः**" जिस से इस जगत् का जन्म पालन और विनाश हो उसे ईश्वर कहा है इसकी रचना देखकर प्रतीत होता है कि कोई ज्ञानी रचयिता है। किसी बन में सुन्दर भवन, उसके चारों तरफ पुष्पवाटिका, कूप, तड़ाग और उसमें भोजन के अनेक पदार्थ इत्यादि मनुष्य-योग्य वस्तु देखी जाय किन्तु किसी कारण वश कोई अन्य पुरुष वहां न दीख पड़े तौभी द्रष्टा पुरुष यही अनुमान करेगा कि इस भवन का रचयिता कोई ज्ञानी पुरुष है। ऐसा नहीं हो सकता कि स्वयं ये अज्ञानी प्रस्तर, मिट्टी और पानी इकट्ठे हो ऐसा

सुन्दर मकान बन गए हों। यदि ऐसा हो तो प्रति दिन लाखों भवन बन जाने चाहिये और वाल्मीकिरामायण और महाभारत के जितने अक्षर हैं उतने अक्षर काटकर किसी बड़े वर्तन में रख दिए जांय यदि वे अक्षर मिलकर श्लोकों के रूप में बन जांय तो कहा जा सकता है कि ये विद्यमान परमाणु स्वयं जगत के रूप में बन गए किन्तु ऐसा हो नहीं सकता अतः सिद्ध है कि कोई रचयिता चेतन है वही ईश्वर है । वह ईश्वर स्वयं अपने शरीर से इस जगत् को नहीं बनाता यदि ऐसा करे तो वह विकारी समझा जाय और तब ईश्वर के शरीर के समान यह जगत् भी पवित्र होना चाहिये । दूसरी बात यह है कि ईश्वर का कोई शरीर नहीं वह अशरीरी है । जो शरीरधारी वह सर्वव्यापक नहीं हो सकता ईश्वर सर्वव्यापक है। अतः सिद्ध है कि कोई अचेतन जड़ पदार्थ भी सदा से चला आता है इसी को प्रकृति कहते हैं । वेदों में इसका नाम अदिति है । अब वह जगत् जड़-चेतनमिश्रित है अतः जड़ भिन्न कोई चेतन भी सदा से विद्यमान था ऐसा अनुमान होता है। उसी का नाम जीव है। इसी प्रकृति और जीव की सहायता से परमात्मा सृष्टि रचा करता है। सृष्टि विज्ञानपर आगे लेख रहेगा। यहां इतना और भी जानना चाहिये कि परमात्मा सदा एक स्वरूप रहते हैं इनमें किसी प्रकार का परिणाम नहीं । जैसे दूध से दही बनता है जलसे भाफ वर्फ और वर्षा से बनौरे बनते हैं इसी का नाम परिणाम है । जीव भी निज स्वरूप से अपरिणामी है केवल प्रकृति ही परिणामिनी है

कैसे आश्चर्य प्रकृति का परिणाम है । वही कहीं सूर्यरूप महाग्नि का समुद्र बनी हुई है । कहीं जलमय हो रही है । कहीं सुन्दर मानवशरीर की छवि दिखा रही है । कहीं कुसुमरूप में परिणत हो कैसे अपूर्व सुरभि फैला रही है । कहीं मृगशरीर बन के दौड़ रही है और कहीं सिंहशरीर से मृग को खा रही है । आहा !! कैसी अद्भुत लीला उस प्रकृति द्वारा ईश्वर दिखा रहा है । आप विचार तो करें यदि कोई महान् चेतन प्रबन्ध-कर्त्ता न होता तो जड़ा अज्ञानिनी अमन्त्री प्रकृति ऐसी नियम-बद्ध लीला कैसे दिखला सकती । वह जड़ा प्रकृति कैसे विचारती कि कुछ परमाणु मिल के सुगन्धि बने । कुछ पत्ते, कुछ डाल, कुछ बीज बने । यह विचार परमाणु पुंजों में कैसे उत्पन्न हो सकता है । अतः सिद्ध है कि प्रबन्धकर्त्ता कोई महान् चेतन है । यह तो आप देखें कूष्माण्ड (पेठा) का एक बीज किसी अच्छे खेत में लगा देवें । इस एक बीज से अच्छे खेत में अच्छे प्रबन्ध के द्वारा कमसे कम सहस्र कूष्माण्ड (पेठे) उत्पन्न होंगे यदि प्रत्येक पेठे में एक एक सौ ही बीज हों तो भी १०००×१००=१००००० बीज होंगे । अब इतने बीजों को पुनः अच्छे खेतों में लगावें इसी प्रकार लगातार दश वर्ष तक बीज लगाते जावें । आप अनुमान करें वे बीज लतारूप में आके कितनी जमीन घेर लेवेंगे ।

यदि इसी प्रकार (१००) सौ वर्ष तक बीज बोएजांय तो मैं कह सकता हूं कि पृथिवी पर कहीं जगह नहीं रहेगी । कहिये कैसी अद्भुत लीला है । एक बीज में कितनी शक्ति भरी हुई

है। बीज बहुत ही छोटा होता है इससे कितनी शाखावाली लता बनजाती है। यदि वह लता तौली जाय तो कितने मन होंगे यह वृद्धि कहां से आई बीज से जिस समय अंकुर होता है तो देखने से प्रतीत होता है कि उस का स्थूलभाग ज्यों का त्यों ही बना हुआ हैं। किसी अदृश्य शक्ति से अंकुर निकल, आता है और धीरे २ दो तीन मास में ही एक महान् लता-कुंज बनजाता है। पुनः इनही पृथिवी, अप्,तेज, वायु, की सहायता से पेठे का बीज, अपने समान ही परिणाम पैदा करता है और मिरची का बीज अपने समान, अंगूर का बीज मधुरता, नीम का बीज तिक्तता, इत्यादि आश्चर्य परिणाम को ये सारे बीज दिखलारहे हैं। इन बीजों में ऐसा अद्भुत प्रबन्ध किसने कर रक्खा है, निश्चय वह महान् ईश्वर है। जो प्रकृति और जीव के द्वारा इस महान् प्रबन्ध को दिखला रहा है। संक्षेपतः यह जानें कि प्रकृति से ही पृथिवी, अप्, तेज, और वायु बने हुए हैं। ये दृश्यमान सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, ताराएं और ये अनन्त ब्रह्माण्ड प्रकृति के ही विकार हैं।

पृथिवी आदि की उत्पत्ति।

वेदों में पृथिवी आदि की उत्पत्ति यथार्थ रूप से लिखी हुई है। धीरे २ बहुत दिनों में यह पृथिवी इस रूप में आई है। यह प्रथम सूर्यवत् जल रही थी, अभीतक पृथिवी केभीतर अग्नि पायाजाता है। कई स्थानों में पृथिवी से अग्नि की ज्वाला निरन्तर निकल रही है। इसी को ज्वालामुखी पर्वत कहते

हैं। कहीं २ गरम पानी निकलता है इसका भी यही कारण है कि वहां पर अग्नि है। धीरे २ ऊपर से पृथिवी शीतल होती गई। तब जीव जन्तु उत्पन्न हुए। लाखों वर्षों में, वह अग्नि की दशा से इस दशा में आई है। वेद विस्पष्ट रूप से कहते हैं कि "सूर्य्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्। दिवंच पृथिवीञ्चान्तरिक्षमथो स्वः" परमात्मा पूर्ववत् ही सूर्य, चन्द्र, द्युलोक, पृथिवी, अन्तरिक्ष, और सब प्रकार सुखमय पदार्थ बनाया करता है।

पुराण और पृथिवी की उत्पत्ति।

परन्तु शोक की बात है कि पुराण इस विज्ञान को भी नहीं मानते और एक असंभव गाथा बनाकर लोगों को महा भ्रम और अज्ञानरूप महासमुद्र में डुबो देते हैं। देवी भागवत पद्म पुराण आदि अनेक पुराणों में यह कथा आती है कि—प्रथम विष्णु ने जल उत्पन्न किया और उसी में घर बना कर सो गए। इनके नाभि कमल से जल के ऊपर एक ब्रह्मा उत्पन्न हुआ। वह कमल पर बैठकर सोच ही रहाथा कि मैं कहां से आया मेरा क्या कार्य है इत्यादि, उतने में ही दो दैत्य मधु कैटभ विष्णु के कर्णमल से उत्पन्न हो (विष्णुकर्णमलोद्भूतौ) जल के ऊपर आ के ब्रह्मा को कमल के ऊपर बैठा देख बोले कि अरे तू! इस पर से उतर जा हम दोनों बैठेंगे। इस प्रकार तीनों लड़ने लगे। पश्चात् ब्रह्मा के पुकार से साक्षात् विष्णु जी आये और इन दोनों असुरों को छल से मारा। तब सेही विष्णु

जी मधुसूदन कहलाने लगे इन दोनों के शरीर से जो रक्त, मज्जा, मांस निकला वही जल के ऊपर जम कर पृथिवी बन गई। इसी कारण इसका नाम मेदिनी पड़ा है क्योंकि इन मधुकैटभों के मेद् अर्थात् मज्जा से बनी हुई है।

प्रमाण— "मधुकैटभयोरासीन्मेदसैव परिप्लुता। तेनेयं मेदिनी देवी प्रोच्यते ब्रह्मवादिभिः" इत्यादि प्रमाण देवी भागवत आदि में देखिये। अथवा शब्दकल्पद्रुम आदि कोशों में मेदिनी शब्द के ऊपर इन्ही प्रमाणों को देखिये। जल की ही प्रथम सृष्टि हुई यह पुराणों का कथन बहुतही मिथ्या है। जब जलराशि समुद्र बनगया जिसमें विष्णुभगवान् सोए हुए थे तो समुद्र किस आधार पर था। अज्ञानी पुरुष समझते है कि नौका के समान यह पृथिवी जल के ऊपर ठहरी हुईहै वा शेषनाग के शिर पर कच्छप की पीठ पर यह स्थापित है। यदि मधुकैटभ के रुधिर मांस मज्जा से यह पृथिवी बनी तो मधुकैटभ का शरीर कहांसे और किस पदार्थ से बना हुआ था। विष्णु यदि शरीर धारी थे तो उनका शरीर किन धातुओं से बना हुआ था। पुनः कान के मैल कहां से आए। कमल कैसे और किन पदार्थों से बने इत्यादि बातों पर बिचार करने से प्रतीत होता है कि पुराणों के लेखक भ्रमयुक्त थे।

सूर्यचन्द्र की उत्पत्ति।

मैं अभी कह चुकाहूं कि परमात्मा ने ही इस सूर्यचन्द्र को बनाया है। परन्तु पुराण कुछ और ही कहते हैं। वे इस प्रकार

वर्णन करते हैं कि कश्यप ऋषि की अदिति, दिति, दनु, कद्रू, विनता आदि अनेक स्त्रियां थीं। इसी अदिति से आदित्य अर्थात् सूर्य, चन्द्र, तारा, नक्षत्र, आदि उत्पन्न हुए।

भागवतादि यह भी कहते हैं कि अत्र ऋषि के नेत्र से चन्द्रमा उत्पन्न हुआ है यथा—

अथातः श्रूयतां राजन् वंशः सोमस्य पावनः।
यस्मिन्नैलादयो भूपाः कीर्त्यन्ते पुण्यकीर्त्तयः॥
सहस्रशिरसः पुंसो नाभिहृदसरोरुहात्।
जातस्यासीत्सुतो धातुरत्रिः पितृसमो गुणैः॥
तस्य दृग्भ्योऽभवत्पुत्रः सोमोऽमृतमयः किल।
विप्रौषध्युडुगणानां ब्रह्मणा कल्पितः पतिः॥

कोई कहता है कि समुद्र से चन्द्र की उत्पत्ति हुई। इसी प्रकार मेघ कैसे बनता वायु क्यों कभी तीक्ष्ण और कभी मन्द होता पृथिवी से क्योंकर गरमजल और अग्नि निकलता ज्वालामुखी क्या वस्तु है भूकम्प क्यों होता विद्युत् क्या वस्तु है मेघ में भयंकर गर्जना क्यों होती इत्यादि बिषय विज्ञानशास्त्र के द्वारा प्रत्येक पुरुषको जानना चाहिये "नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते " मनुष्य की उत्पत्ति ही इसी कारण हुआ है। जिज्ञासा करना मनुष्यका परमधर्म है। वेदों और शास्त्रों में इसकी बहुधा चर्चा आई है। हम अपनी चारोंतरफ़ सहस्रों पदार्थ देखते हैं। उनको विचार दृष्टि से अवश्य जानना चाहिये। आकाशस्थ ताराएं कितनी बड़ी और कितनी छोटी हैं वे पांक्तिबद्ध और

बन के समान क्यों दीखतीं, पृथिवी से ये कितनीं दूरी पर हैं ! एवं नक्षत्रों की अपेक्षा चन्द्र क्यों बड़ा दीखता पुनः इसके इतने रूप कैसे बदलते ! प्रायः सबही ग्रह पूर्व से पश्चिम आते हुए क्यों देख पड़ते ! इसी प्रकार पृथिवी पर नाना घटनाएं होती रहतीं हैं—कभी कभी वर्षा ऋतु में मेघ भयङ्कर रूप से गर्जता, बिजली लगकर कभी २ मकान और बड़े २ ऊंचे वृक्ष जल जाते, मनुष्य मरजाते, वह बिजली कहांसे और कैसे उत्पन्न होती, मेघ क्योंकर बनता, इतने जल आकाश में कहां से इकट्ठे होजाते, पुनः मेघ आकाश में किस आधार पर बड़े वेग से दोड़ते, वहां ओले कैसे बनते, फिर थोड़ी ही देर में मेघका कहीं पता नहीं रहता, इत्यादि बातें अवश्य जाननी चाहिये।

ऐ मनुष्यो ! ये ईश्वरीय विभूतियां हैं इन्हें जो नहीं जानता वह कदापि ईश्वर को नहीं जान सकता वह अज्ञानी पशु है स्वयं वेद भगवान् मनुष्य जाती को जिज्ञासा की ओर लेजाते हैं आगे इसी विषय को देखिये। अतः जिज्ञासाकरना मनुष्य का परम धर्म है इति

ऐ मनुष्यो ! इस जगत् में यद्यपि परमात्मा साक्षात् दृष्टिगोचर नहीं होता तथापि इसकी विभूतियां ही दीखपड़तीं और इन ही में वह छिपा हुआ है अतएव बड़े २ प्राचीन ऋषि कह गए हैं कि "आराममस्य पश्यन्ति न तं पश्यति कश्चन" । इस परमात्मा की वाटिका कोही सब कोई देखते हैं और इसी के द्वारा उसको देखते हैं साक्षात् उसको कोई नहीं देखता ।

अतः इस जगत के वास्तविक तत्त्वों को जो सदा अध्ययन किया करता है वह, मानो, परम्परा से ईश्वरका ही चिन्तन कर रहा है। व्यास ऋषि इसी कारण ब्रह्म का लक्षण कहते हुए कहते हैं कि "जन्माद्यस्य यतः" जिससे इस जगत् का जन्म, स्थिति और संहार हुआ करता है वही ब्रह्म है इससे ब्रह्म और जगत् का सम्बन्ध बतलाया अतः यदि जगत् को जान लेवे तो, मानों, ईश्वर की रचना जानली यह कितनी बड़ी बात है। अतःजिज्ञासुयो ! प्रथम ईश्वर की रचना की ओर ध्यान दो ॥

॥ इति ॥

विज्ञापन

आर्य्य भ्राताओ ! अभी तक वेदों के ऊपर साक्षात् विचार यथार्थरूप से आर्य्यों तथा पौराणिकों में नहीं हुआ है। वेदों पर कितने लाञ्छन लगाए हुए हैं इसको कौन नहीं जानता। प्रत्येक भारतवासी को उचित था कि वह इस ओर पूरा ध्यान देता, परन्तु कई सहस्र वर्षों से यह कार्य्य न होसका। मैं अपनी बुद्धि के अनुसार कई वर्षों से वेद सम्बन्धी लेख लिख आपके निकट पहुंचा रहा हूं। अभी तक मेरा मनोरथ पूर्ण नहीं हुआ, मैं इतने से प्रसन्न नहीं हूं, अब मैं आप लोगों की सहायता चाहता हूं कि वेदों के गुप्त २ अर्थ प्रकाशित किये जांय। उदाहरण के लिये यह "वैदिक रहस्य" आपके समीप उपस्थित है। विशेष लिखने की आवश्ययक्ता नहीं, यदि आप लोग इस से कुछ लाभ समझते हैं तो इस के ग्राहक बनें और बनावें। अग्रिममूल्य भेजने वाले को (१०००)एक सहस्र पृष्ठों का ग्रन्थ ३।।=) में मिलेगा। प्रथम भाग (चतुर्दश-भुवन) मूल्य।), द्वितीय भाग (वसिष्ठ-नन्दिनी) मूल्य ।-) है॥

अब मैं अपने ग्राहकों और अनुग्राहकों से प्रथम विनय कर शुभ समाचार देता हूं कि अब विलम्ब नहीं होगा। अब वे क्षमा करें। चतुर्थ भाग भी प्रेस में देदिया गया है बहुत शीघ्र १००० पृष्ठ प्रकाशित हो जायंगे। जिन मेरे शतशः भ्राताओं ने इसके विषय में वारम्वार पत्र लिखकर मुझे उत्साहित किया है उन्हें बहुत धन्यवाद देता हूं। वे मेरे मित्र अब इसका प्रचार करें करावें॥

भवदीय—

शिवशंकर.

❀ वैदिक रहस्य—द्वितीय भाग ❀

अग्निं वसिष्ठो हवते पुरोहितो * * * *
मृडीकाय पुरोहितः ॥ ऋग्० १० । १५० । ५ ॥

सम्पादक—
शिवशङ्कर शर्म्मा,
काव्यतीर्थ.

जॉब प्रिंटिंग प्रेस अजमेर में मुद्रित ।

प्रथमवार	संवत् १९६८ वि०	मूल्य ।=)
१०००	सन् १९११ ई.	डा. म. ॥

वक्त...

प्रिय आर्य्य भ्राताओ ! देखिये ! ...
महारत्न खचित हैं । इस वसिष्ठ-नन्दिनी को
पढ़िये । मित्र और वरुण के पुत्र वसिष्ठ क्यों कहा
इनकी माता उर्वशी क्यों ? क्षत्रियों से इनका घनिष्ठ
कैसे हुआ ? राजपुरोहित बनकर ये चारों युगों में जी
कैसे रहे ? इनके निकट नन्दिनी कामधेनु सदा क्यों
करती ? विश्वामित्र और वसिष्ठ में महासंग्राम क्यों ?
वसिष्ठ वरुण के गृह पर चोरी करने को गए थे ? इ
दिकों का क्या सत्य आशय है सो इस छोटीसी पुस्त
दिखलाया गया है । यह ग्रन्थ—

पर्जन्यकारकेष्टि

के स्मरण में प्रकाशित किया गया है, जिस को भा
सुरानी, जिला जयपुर निवासी, सम्प्रति अजमेर प्र
सेठ नन्दरामजी के पुत्र सेठ श्रीयुत लादूरामजी-ठेके
जिन्होंने संवत् १९५५ वि० में अपनी ओर से भी
बृहत् यज्ञ किया था और श्रीमान् आगरा-निवासी क
लालजी जो प्रथम अजमेर डी. ए. वी. हाई स्कूल
हेडमास्टर थे और अब गवर्नमेंट ब्रैंच स्कूल अजमे
हेडमास्टर हैं इन दोनों महाशयों ने निज और
की सहायता के द्वारा अच्छे प्रकार चारों वेदों के
मन्त्रों से संवत् १९६८ भाद्र में ११ दिवस का
और यज्ञेश्वर परमात्मा की कृपा से यज्ञ के चतुर्थ
से बराबर वर्षा भी होने लगी । धन्यवाद उस ईश्वर
उसी को यह पुस्तक भी समर्पित है ॥

मिथिला देश-निवासी—

पण्डित शिवशंकर शर्मा
काव्य...

...।१०।१९११.]

॥ ओ३म् ॥

देश में अनेक त्रुटियां हैं, गवेषणा नहीं की जाती। शतपथादि ब्राह्मण ग्रन्थों में तथा महाभारत, रामायण, पुराणों में बहुतसी ऐसी आख्यायिकाएं उक्त हैं जिनसे बड़े २ मानवहितकारी सिद्धान्त निकलते हैं क्योंकि वेदों से वे आए हुए हैं किन्तु कथा के स्वरूप में वे वैदिक सिद्धान्त लिखे गए हैं अतः उनका आशय आज सर्वथा अस्तव्यस्त होगया है। उदाहरण के लिये मैं वेदों के सुप्रसिद्ध वसिष्ठ और अगस्त्य दो ऋषियों को प्रस्तु करता हूं। क्या यह सम्भव है कि दो पुरुषों के वी मिलकर बालकों को उत्पन्न करें, वह भी साक्षात् मातृगर्भ में नहीं किन्तु स्थल और घट में उत्पत्ति हो? उर्वशी के दर्शन मात्र से मित्र और वरुण दो देवों का चित्त चञ्चल होजाय? उनसे तत्काल ही एक या दो सुभग बालक उत्पन्न हों और तत्काल ही देवगण उन्हें कमल के पत्रों पर बिठला उनकी स्तुति पूजा करें? उनमें से एक बालक सम्पूर्ण सूर्यवंशी राजाओं का पुरोहित बन सृष्टि की आदि से प्रलय तक अजर अमर हो एक रूप में सदा स्थिर रहे? क्या यह सम्भव है कि वसिष्ठ की एक गौ जो चाहे सो करे? हजारों प्रकार की सेनाओं को वह स्वयं रचले पृथिवी के समस्त पदार्थ उसकी आज्ञा में हाथ जोड़कर

खड़े रहें इस शबला गौ के लिये वसिष्ठ औ... में तुमुल संग्राम हो ? वसिष्ठ के शतपुत्रों को विश्वा... मरवा दे, इस शोक में वसिष्ठ सुमेरुपर्वत के सब से ऊपर के शिखर पर से गिरें तो भी न मरें। अग्नि उन्हें न जलावे समुद्र इनसे डरजाय। हाथ पैर और सब अं... को बांध नदियों में डूबने को जायँ किन्तु नदियां भा... जायँ इनके बंधन को तोड़ डालें इत्यादि शतशः कथा... वसिष्ठ के विषय में जो कही जाती हैं उनका क्या आश... है ? क्या सचमुच ये वसिष्ठ और अगस्त्य दो महान् आ... वेश्या पुत्र हैं ? उर्वशी कोई वेश्या है ? क्या मित्र औ... ...रुण कोई ऐसे तुच्छ देव हैं ? जो झट स्त्री पर मोहि... जाते ? इत्यादि। क्या इनकी सत्यता के अन्वेषण ... लिये कभी हम प्रयत्न करते हैं ? निःसन्देह यह अद्भु... कथा है। इससे अति गूढ़ बातें निकलती हैं। मित्र औ... वरुण के पुत्र वसिष्ठ और अगस्त्य की आख्यायिका ... राज्य व्यवस्था सम्बन्धी एक परम उपयोगी वैदिक सिद्धा... विनिःसृत होता है अतः मैं इस भाग में इसको प्र... दरसा पश्चात् वसिष्ठ सम्बन्धी अन्यान्य कथाओं का आश... प्रकट करूंगा इसको ध्यान से आप लोग पढ़ें ॥

इसके लिये प्रथम यह जानना आवश्यक है कि स्वत... और अज्ञानी राजा से देश की कितनी हानि हुई है औ... होरही है। अतएव पृथिवी पर के सभ्य देशों में आ... कल दो प्रकार के राज्य हैं। एक प्रजाधीन दूसरा सभा...

...र्ति जिसमें राजा को सभा की आज्ञा का वशवर्ती होना पड़ता है। सर्व विद्वानों की प्रायः इसमें एक सम्मति है कि प्रजाधीन ही राज्य चाहिये और यही मनुष्यता है ज्यों २ मनुष्यता की वृद्धि होगी त्यों २ स्वयं राज्य व्यवस्था शिथिल होती जायगी क्योंकि प्रत्येक मानव निज कर्त्तव्य को अच्छे प्रकार निबाहेगा। इतिहास से विदित होता है कि जब २ राजा उच्छृङ्खल हुआ है तब २ महती आपत्ति प्रजाओं में आई हैं। अतः वेद में ऐसा वर्णन आता है—

यत्र ब्रह्म च क्षत्रञ्च सम्यञ्चौ चरतः सह।
तं लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्र देवाः सहाग्निना॥

यजु० २०। २५॥

ब्रह्म=ज्ञान, विज्ञान, परमज्ञानी जन, धर्म्मतत्त्वज्ञ, धर्म्माध्यक्ष पुरुषों की महती सभा इत्यादि। क्षत्र=बल, प्रजाशासक वर्ग, धार्म्मिक बली, प्रजा शासकों की महती सभा इत्यादि। प्रज्ञेषम्=प्रजानामि जानता हूं। देव=प्रजावर्ग, शास्य प्रजाएँ। अग्नि=परमात्मा, ब्राह्मण, अग्नि होत्रादि कर्म्म। यद्यपि वैदिक शब्द लोक में भी प्रयुक्त हुए हैं परन्तु लोक में उन वैदिक शब्दों के अर्थ में बहुत कुछ परिवर्तन होगया है वेदों के अर्थों के विचार से वे २ अर्थ अच्छे प्रकार भासित होने लगते हैं। अथ मन्त्रार्थ—(तम्+लोकम्+पुण्यम्+प्रज्ञेषम्) उस लोक

को मैं पुण्य समझता हूं। (यत्र+ब्रह्म+च+क्षत्रं...
जहां ज्ञान और बल अथवा ज्ञानी और बली अथवा धर्म
व्यवस्थापक विद्वद्वर्ग और उस व्यवस्था के अनुसार शासन
करनेहारे राजगण (सम्यञ्चौ) अच्छे प्रकार मिलकर परस्पर
सत्कार करते हुए (सह+चरतः) साथ विचरण करते हैं
साथ ही सर्व व्यवहार करते हैं। (यत्र+देवाः) और जहां
प्रजावर्ग (अग्निना+सह) ईश्वर, ज्ञानी और अग्निहोत्रादि
शुभ कर्म्म के साथ विचरण करते हैं अर्थात् जहां सब
प्रजाएँ आस्तिक हो शुभ कर्म्मों को यथा विधि करते हैं
और ज्ञानियों के पक्ष में रहते हैं। वही देश वही लोक
पवित्र है पुनः—

इदं मे ब्रह्म च क्षत्रं चोभे श्रियमश्नुताम्।
मयि देवा दधतु श्रियमुत्तमां तस्यै ते स्वाहा॥
यजु० ३२। १६।

यह भी एक प्रार्थना है (इदम्+ब्रह्म+च+क्षत्रम्+च)
यह ज्ञानी और शासक वर्ग (उभे+मे+श्रियम्+अश्नुताम्)
दोनों ही मिलकर मेरी सम्पत्ति को भोग में लावें (मयि+
देवाः+उत्तमाम्+श्रियम्+दधतु) मुझ में समस्त शुभाभि-
लाषी प्रजावर्ग उत्तम श्री सम्पत्ति स्थापित करें (तस्यै+
ते+स्वाहा) हे सम्पत्ति! तुम्हारे लिये मेरा सर्वस्वत्याग
है स्वाहा=स्व+आहा। स्व=धन। आहा सब प्रकार
से त्याग। अपने स्वत्त्व को सर्वप्रकार से त्याग करने का

[illegible] हैं । उन पूर्वोक्त ही दो मन्त्रों में नहीं किन्तु यजुर्वेद के बहुत स्थलों में ब्रह्म और क्षत्र दोनों को मिलकर व्यवहार करने का वर्णन आता है दो चार उदाहरण ये हैं—

स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु । यजु० १८ । ३८ ॥

वह ब्रह्म और क्षत्र हमको पाले । यही वाक्य इस अध्याय की ३९, ४०, ४१, ४२, ४३वीं कण्डिकाओं में आया है ॥

सोमः पवतेऽस्मै ब्रह्मणेऽस्मै क्षत्राय । ७ । २१ ॥

परमात्मा इस ब्रह्म और क्षत्र को पवित्र करता है ॥

ब्रह्मणे पिन्वस्व क्षत्राय पिन्वस्व । ३८ । १४ ॥

हे भगवन् ! ब्रह्म और क्षत्र को उन्नत करो । पुनः प्रार्थना आती है कि—

स नो भुवनस्य पते प्रजापते यस्य त उपरि गृहा यस्य वेह । अस्मै ब्रह्मणेऽस्मै क्षत्राय महि शर्म यच्छ स्वाहा । यजु० १८ । ४४ ॥

(भुवनस्य + पते + प्रजापते) हे सम्पूर्ण-विश्वाधिपति प्रजापति परमात्मन् ! (यस्य + ते उपरि + गृहाः) जिस आप के गृह ऊपर हैं । (यस्य + वा + इह) जिस आप के गृह इस लोक में हैं अर्थात् जो आप सर्वव्यापक हैं (सः + नः +

वरुण के बिना पृथक् रह सका किन्तु क्षत्र ज[illegible]
वह ब्रह्म मित्रके बिना न रह सका ।।२।। क्योंकि ब्रह्म मि
की आज्ञा बिना क्षत्र वरुण जो जो कर्म्म किया करत
था वह २ उसके लिये वृद्धि प्रद नहीं होता था ।।३।। सं
इस क्षत्र वरुण ने ब्रह्म मित्र को बुलाया और कहा कि
मेरे समीप आप रहें (संसृजावहै) हम दोनों मिल जायं
मिलकर सर्व व्यवहार करें । मैं आपको आगे करूं
और आपकी आज्ञानुसार मैं कर्म्म करूंगा । ब्राह्मण इ
को स्वीकार कर दोनों मिल गए ।। ४ ।। तबसे ही मैत्र
वरुण नाम का एक ग्रह अर्थात् एक पात्र होता है ।।५
इस प्रकार पौरोहित्य चला । इस कारण सब ब्राह्मण
सब क्षत्रिय की पौरोहित्य-वृत्ति की कामना नहीं करत
क्योंकि ये दोनों मिलकर सुकृत और दुष्कृत कर्म कर
हैं अर्थात् दोनों ही पाप पुण्य के भागी होते हैं । वैसा
सब क्षत्रिय सब ब्राह्मण को पुरोहित नहीं बनाता क्योंकि
दोनों मिलकर सुकृत और दुष्कृत करते हैं । तबसे क्षत्रि
वरुण जो २ कर्म्म ब्राह्मण मित्र से आज्ञा पाकर किय
करता था वह २ कर्म उसको वृद्धिप्रद हुआ । इस प्रमाण
से सिद्ध होता है कि ब्रह्म को मित्र और क्षत्र को वरुण
कहते हैं और इन दोनों को मिलकर ही व्यवस्था करन
चाहिये । इसमें यदि शासकवर्ग, ज्ञानीवर्ग की अधीनत
को स्वीकार नहीं करे तो उसका निर्वाह कदापि न हो
अब आप वसिष्ठ और अगस्त्य दोनों मैत्रावरुण क्यों

कहलाते हैं यह समझ सकते हैं। ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों मिलकर जिस सर्व हितकारी नियम को बनाते हैं उसी का नाम वसिष्ठ है और ब्राह्मण क्षत्रिय सभा की आज्ञा पाकर इस व्यवस्थित नियम को जो ग्राम २ में जा प्रजाओं में चलाया करता है उसका नाम अगस्त्य है। राज्यसम्बन्धी निखिल संस्थाओं का एक नाम उर्वशी है। अब मैं क्रमशः उत्पत्ति आदि बतलता हुआ इस विषय को विस्पष्ट करूंगा॥

वसिष्ठ की उत्पत्ति।

विद्युतो ज्योतिः परि संजिहानं मित्रावरुणा यदपश्यतां त्वा। तत्ते जन्मोतैकं वसिष्ठागस्त्यो यत्त्वा विश आजभार। ऋ० ७।३३।१०॥

(वासिष्ठ) हे वसिष्ठ=हे सत्यधर्म्म! (यद्+मित्रावरुणा) जब २ मित्र और वरुण अर्थात् ब्रह्म और क्षत्र दोनों मिलके (विद्युतः+ज्योतिः+परि+संजिहानम्) देदीप्य मान ज्योति को सर्वथा परित्याग करते हुए (त्वा+अपश्यताम्) आपको देखते हैं (तत्+ते+एकम्+जन्म) तब २ आपका प्रसिद्ध जन्म हुआ है। (उत) और (यद्) जब (अगस्त्य) ब्रह्म क्षत्र सभा से नियुक्त मान्य प्रचारक (त्वा+विशैः+आजभार) आपको प्रजाओं के निकट चारों ओर लेजाते हैं तब २ आपका जन्म होता है अर्थात् आपकी प्रसिद्धि

बिगड़ने लगें तब २ उचित है कि ब्रह्म और क्षत्र मिल कर उसको संभालें और उस समय के लिये विशेष नियम बनावें। तब सब प्रजाओं की ओर से स्वीकृत होने पर वे प्रजाएँ स्वयं दैव्य ब्रह्म की आज्ञा से ग्राम २ के नायक को वे २ नियम सौंपें तदनुसार सब कोई चलें। इससे महान् सुख उत्पन्न होता है। ऐसा नियम स्थापित होने से कैसा सुख आनन्द वैभव फैलता है इस पर स्वयं वेद भगवान् कहते हैं—

स प्रकेत उभयस्य विद्वान् सहस्रदान उत वा सदानः। यमेन ततं परिधिं वयिष्यन्नप्सरसः परि जज्ञे वसिष्ठः॥ ऋ० ७। ३३। १२॥

वेदों में एक यह भी रीति है कि गुण में भी चेतनत्व का आरोप कर गुणिवत् वर्णन करने लगते हैं। राज्य नियम से लोक ज्ञानी विद्वान् महाधनाढ्य होते हैं अतएव वह नियम ही ज्ञानी, विद्वान्, महाधनाढ्य आदि कहा जाता है। (सः+प्रकेतः) वह परम ज्ञानी (उभयस्य+विद्वान्) और ऐहलौकिक और पारलौकिक दोनों सुखों को जानता हुआ वसिष्ठ (सहस्रदानः) बहुत दानी होता है (उत वा+सदानः) अथवा सर्वदा दान देता ही रहता है। कब? सो आगे कहते हैं—(यमेन) ब्रह्म क्षत्रों के प्रबल दण्डधारा से (ततम्+परिधिम्) विस्तृत व्यापक परिधि रूप वस्त्र को (वयिष्यन्) बुनता हुआ (वसिष्ठः) वह सत्य

धर्म (अप्सरसः+परि जज्ञे) सर्व संस्थाओं को लक्ष्य करके उत्पन्न होता है। अब आगे सार्वजनीन परम हित-कारी सिद्धान्त कहते हैं—

सत्रे ह जाता विषिता नमोभिः कुंभेरेतः सिषिचतुः समानम् । ततोह मान उदियाय मध्यात्ततो जातमृषिमाहुर्वसिष्ठम् ॥१३॥ उक्थ-भृतं सामभृतं बिभर्त्ति ग्रावाणं बिभ्रत्प्रवदात्यग्रे उपैनमाध्वं सुमनस्यमाना आ वो गच्छाति प्रतृदो वसिष्ठः ॥ ऋ० ।७।३३।१४॥

सत्र=सतांत्रः सत्रः। सज्जनों की जो रक्षा करे उस यज्ञ का नाम सत्र है। अथवा जो सत्य यज्ञ है वही सत्र है। सम्पूर्ण प्रजाओं के हितसाधक उपायों के बनाने के लिये जो अनुष्ठान है वही महासत्र है। कुम्भ=वासतीवर कलश अर्थात् सुन्दर उत्तम २ जो बसने के ग्राम नगर हैं वेही यहां कुम्भ हैं। जैसे कुम्भ में जल स्थिर रहता है तद्वत् ग्राम में बसने पर मनुष्य स्थिर होजाता है। अतः सर्व भाष्यकार इस कुम्भ का नाम वासतीवर रक्खा है। मान=माननीय। जिसका सम्मान सब कोई करे। मापने-हारा, परीक्षक इत्यादि। अथ मन्त्रार्थ—(सत्रे+ह+जातौ) यह प्रसिद्ध बात है कि जब बहुत सम्मति से सत्र में दीक्षित होते हैं और (नमोभिः+इषिता) सत्कार से जब अभिलाषित

होते हैं अर्थात् जब ब्रह्मसमूह और क्षत्रसमूह को बड़े सत्कार के साथ सर्व हितसाधक धर्म्मप्रणेतृ सभारूप महा यज्ञ में प्रजाएँ बुलाकर धर्म्म नियम बनवाती हैं त (समानम्+रेतः+कुम्भे+सिषिचतुः) वे मित्र और वरु अर्थात् ब्रह्म और क्षत्र दोनों मिलकर समानरूप से रेत= रमणीय धर्म्मरूप प्रवाह को प्रत्येक ग्रामरूप कलश सींचते हैं(ततः+ह+मानः+उदियाय) तब सबका मापनेहार सर्व को एक दृष्टि से देखनेहारा एक मानने योग्य निय उत्पन्न होता है। (ततः+मध्यात्+वसिष्ठम्+ऋषिम्+जात आहुः) और उसी के मध्य से वसिष्ठ ऋषि को उत्प कहते हैं ॥१३॥ इसका आशय विस्पष्ट है अब आगे उपदे देते हैं कि प्रजामात्र को उचित है कि इस वसिष्ठ सत्कार करे (प्रतृदः) हे अत्यन्त हिंसक पुरुषो! हे प्रजा में उपद्रवकारी नरो! (वः+वसिष्ठः+आगच्छति) तुम्हा निकट राष्ट्रनियम आता है। (सुमनस्यमानाः) प्रस मन होके तुम (एनम्) इस धर्म नियम को (उप+आध्वम् अपने में देववत् आदर करो। वह वसिष्ठ कैसा है (उक्थ भृतम्+सामभृतम्) उक्थभृत्=ऋग्वेदीय होता। सामभृत् उद्गाता। (बिभर्ति) इन दोनों को धारण किये हुए और (ग्रावाणम्+बिभ्रत्) उग्र प्रस्तर अर्थात् दण्ड लिए हुए है। यजुर्वेदी अध्वर्यु को भी साथ में रक्खे हु है (अग्रे+प्रवदाति) और वह आगे २ निज प्रभाव को रहा है ॥१४॥ जैसा धर्म शास्त्रों में लिखा है कि "त्र्यव

चापि वृत्तस्था" न्यून से न्यून ऋग्वेदी, यजुर्वेदी और सामवेदी तीन मिलकर जिस धर्म को नियत करें उसको कोई भी विचलित न करने पावे। इसी ऋचा से यह नियम बना है। प्रतृद=उतृदिर् हिंसानादरयोः। हिंसा और अनादर अर्थ में तृद् धातु आता है अर्थात् जो राष्ट्रीय नियमों को हिंसित और अनादर करते है वेही यहां प्रतृद हैं। अब और भी अर्थ विस्पष्ट होजाता है। धर्म्म नियम किसके लिये बनाए जाते हैं निःसन्देह उन दुष्ट पुरुषों को नियम में लाने के लिये ही धर्म्म की स्थापना होती है अतः वेद भगवान् यहां कहते हैं कि हे दुष्ट हिंसको! और निरादरकारी जीवो! देखो तुम्हारे निकट धर्म्म आरहे हैं। इनका प्रतिपालन करो। यह नियम तीनों वेदों की आज्ञानुसार स्थापित हुआ है यदि इसका निरादर तुमने किया तो तुम्हारे ऊपर महादण्ड पतित होगा। इस से यह भी विस्पष्ट होता है कि वासिष्ठ नाम धर्म्म नियम का ही है जो ब्रह्मक्षत्र सभा से सर्वदा सिक्त होता रहता है॥

त इन्निण्यं हृदयस्य प्रकेतैः सहस्रवल्शमभि सं चरन्ति। यमेन ततं परिधिं वयन्तोऽप्सरस उपसेदुर्वसिष्ठाः। ७। ३३। ९॥

वसिष्ठाः=यहां वसिष्ठ शब्द बहुवचन है। इस मंडल में बहुवचनान्त वसिष्ठ शब्द कईएक स्थान में प्रयुक्त हुआ है (ते वसिष्ठाः) वे २ धर्म्म नियम (इत्) ही (निण्यम्)

अज्ञानों से तिरोहित=ढँके हुए (सहस्रवल्शम्) सहस्र शाखायुक्त उस २ स्थान में (हृदयस्य+प्रकेतैः) हृदय के ज्ञानविज्ञानरूप महाप्रकाश के साथ (संचरन्ति) विचरण कर रहे हैं (यमेन+ततम्+परिधिम्) दण्ड की सहायता से व्यापक परिधि रूप वस्त्र को (वयन्तः) बुनते हुए (अप्सरसः +उपसेदुः) उस २ संस्था के निकट पहुंचते हैं ॥

अब मैंने यहां कई ऋचाएँ उद्धृत की हैं विद्वद्गण विचार करें कि वसिष्ठ शब्द के सत्यार्थ क्या हैं। इन्हीं ऋचाओं को लेकर सर्वानुक्रमणी बृहद्देवता और निरुक्त आदि में जो २ आख्यायिकाएँ प्रचलित हुई हैं उनसे भी यही अर्थ निःसृत होते हैं। तद्यथा बृहद्देवता—

उतासि मैत्रावरुणः। ऋ०।७।३३।११॥

ऋचा की सायण व्याख्या में बृहद्देवता की आख्यायिका उद्धृत है वह यह है—

तयो रादित्ययोः सत्रे दृष्ट्वाप्सरस मुर्वशीम्। रेतश्च स्कन्द तत्कुम्भे न्यपतद्वासतीवरे। तेनैव तु मुहूर्त्तेन वीर्यवन्तौ तपस्विनौ। अगस्त्यश्च वसिष्ठश्च तत्रर्षी संबभूवतुः। बहुधा पतितं रेतः कलशेच जले स्थले। स्थले वसिष्ठस्तु मुनिः संभूत ऋषिसत्तमः। कुम्भे त्वगस्त्यः संभूतो जले मत्स्यो महाद्युतिः। उदियाय ततोऽगस्त्यः शम्यामात्रो महातपाः। मानेन संमितोयस्मात् तस्मात् मान इहोच्यते। इत्यादि ॥

अदिति के पुत्र मित्र और वरुण हुए। वे दोनों किसी यज्ञ में गए। वहां उर्वशी को देख साथ ही दोनों का रेत गिर गया। वह रेत कुछ घड़े में और कुछ स्थल में जा गिरा। स्थल में जो गिरा उससे वसिष्ठ और कलश में जो गिरा उससे अगस्त्य उत्पन्न हुए। अतएव इन दोनों को मैत्रावरुण कहते हैं क्योंकि ये दोनों मित्र और वरुण के पुत्र हैं अगस्त्य जिस कारण घट से उत्पन्न हुए अतः इनका घटयोनि, कलशज आदि भी नाम हैं॥

भागवत।

भागवतादि पुराणों ने वसिष्ठ को शुद्ध दिखलाने के लिये एक विचित्र कथा गढ़ी है। इक्ष्वाकुपुत्र निमि राजा ने वसिष्ठ को बुलाकर यज्ञ करवाने को कहा परन्तु वसिष्ठ को पहले इन्द्र ने बुलाया था अतः "मैं इन्द्र को प्रथम यज्ञ करवा आप का यज्ञ आरम्भ करूंगा" ऐसा कह वसिष्ठजी इन्द्र के यज्ञ में चले गए। इधर निमि ने अन्य ऋत्विकों को बुला यज्ञ करना आरम्भ करादिया। लौटने पर अपने यजमान का ऐसा अधैर्य्य देख वसिष्ठ ने निमि को शाप दिया कि तुझ से शरीर गिर जाय। निमि ने भी गुरु को अधर्मी देख शाप दिया कि तेरी भी यही गति हो "अशपत्पतताद्देहो निमेः पण्डितमानिनः"। निमिः प्रतिददौ शापं गुरवेऽधर्म्मवर्तिने। तवापि पतताद्देहो लोभाद्धर्म्ममजानतः। भाग० ९। १३। ५॥ इस

प्रकार शापग्रस्त हो वसिष्ठजी मित्र और वरुण के वीर्य
से उर्वशी में पुनः उत्पन्न हुए "मित्रावरुणयोर्जज्ञे उर्वश्यां
प्रपितामहः" । भागवत ६ । १३ । ६ ॥ वसिष्ठ के पुत्र
शक्ति । शक्ति के पराशर । पराशर के व्यास । व्यास के
पुत्र शुक । अतः शुकाचार्य परीक्षित् से कहते हैं कि
राजन् ! मित्र और वरुण के रेत से उर्वशी में मेरे पिता-
मह उत्पन्न हुए ॥

समीक्षा—यद्यपि वेद में जल स्थल और वासतीव
आदि का वर्णन नहीं तथापि बृहद्देवता ऐसा कहता है
वेदों के एक ही स्थान कुम्भ में दोनों ऋषियों की उत्पत्ति
कही गई है। इसका भी भाव यह है कि क्या जल और क्या
स्थल दोनों स्थानों में धर्म्म नियम तुल्य रूप से प्रचलित
होते हैं। अब पुराणों की बात पर दृष्टि दीजिये। पुराण
सर्वदा एक न एक भूल करते ही रहते हैं। पुराण ब्रह्मा
से सारी उत्पत्ति मानते हैं। परन्तु बहुतसी बातें प्राचीन
चली आती हैं जहां ब्रह्मा का कुछ भी सम्बन्ध नहीं किन्तु
पौराणिक समय में वे बातें इतनी प्रचलित थीं कि उनको
दूर नहीं कर सकते थे। उर्वशी में मित्रावरुण द्वारा वसिष्ठ
की उत्पत्ति और वही सूर्यवंशीय राजाओं का गुरु
यह बात अति प्रसिद्ध थी इस कथा को पुराण लोप नहीं
कर सकते थे। अतः इनको एक नवीन कथा गढ़नी पड़ी
पुराणों की दृष्टि में असम्भव कोई बात नहीं अतः ब्रह्मा
से लेकर केवल छः पीढ़ियों में हजारों चौयुगी काल के

समाप्त कर देते हैं । कहां सृष्टि की आदि में ब्रह्मा का पुत्र वसिष्ठ ! और कहां केवल छठी पीढ़ी में शुकाचार्य के कलि युगस्थ परीक्षित् को कथा सुनाना । कितना लम्बा चौड़ा यह गप्प है ॥

यास्ककी सम्मति—उर्वशी शब्द का व्याख्यान करते हुए यास्क भी "तस्या दर्शनान्मित्रावरुणयो रेतश्चस्कन्द" उसके दर्शन से मित्र और वरुण का रेत स्खलित होगया ऐसा लिखते हैं । आश्चर्य की बात है कि वे भाष्यकार निरुक्तकार आदि भी ऐसी २ जटिल कथा का आशय न बतला गए ॥

वसिष्ठ पुरोहित—यही उर्वशीपुत्र मैत्रावरुण वसिष्ठ राजवंशों के पुरोहित थे । यही आशय सर्वकथाओं से सिद्ध होता है । वाल्मीकि रामायण के उत्तर काण्ड में यों लिखा है "कस्य चित्त्वथ कालस्य मैत्रावरुणसंभवः" । वसिष्ठस्तेजसा युक्तो जज्ञे इक्ष्वाकुदैवतम् ॥ ७ ॥ तमिक्ष्वाकुर्महातेजा जातमात्र मनिन्दितम् । वव्रे पुरोधसं सौम्यं वंशस्यास्य हिताय नः ॥ ८ ॥ रा० । उ० । सर्ग ५७ ॥ सूर्यवंशी के आदि राजा इक्ष्वाकु हैं । इन्होंने इसी उर्वशी सम्भव मैत्रावरुण वसिष्ठ को अपने पुरोहित बनाया । शुकाचार्य बड़े आदर के साथ इनको ही अपना प्रपितामह कहते हैं अब विचार करने की बात है कि इस सबका यथार्थ तात्पर्य क्या है ? मैं अभी जो पूर्व में लिख आया

हूं यही इसका वास्तविक तात्पर्य है। वसिष्ठ कोई आद[र्श]
नहीं हुआ न उर्वशी आदि ही कोई देहधारी जीव है।
एवं मित्र और वरुण सामान्य वाचक शब्द हैं किसी खा[स]
व्यक्ति वाचक नहीं अब मैं नामार्थ से भी उस विषय [को]
दृढ़ करता हूं॥

वसिष्ठादि नामों के अर्थ—'वसु' शब्द से यह वसि[ष्ठ]
बना है। जो सब के हृदय में बसे वह वसु, जो अतिश[य]
वास करने हारा है वह वसिष्ठ। मैं लिख आया हूं [कि]
यहां धर्म्म नियम का नाम वसिष्ठ है। निःसन्देह वे[ही]
धर्म्म नियम संसार में प्रचलित होते हैं जो सबके रुचिक[र]
हों जिन्हें सब कोई अपने हृदय में वास दे सकें। अ[तः]
धर्म्म नियम का नाम यहां वसिष्ठ रक्खा है। वसु शब्[द]
धन सम्पत्ति आदि अर्थ में भी आया है अतः जो निय[म]
अतिशय सम्पत्तियों को उत्पन्न करने हारा हो, प्रजाओं
में जिससे चारों तरफ अभ्युदय हो उसी नियम का ना[म]
वसिष्ठ है। अगस्त्य=अग+पर्वत, यहां अचल रूप [से]
स्थिर जो प्रजाओं में नाना अज्ञान, उपद्रव विघ्न हैं वे[ही]
अग रूप हैं उन्हें जो विध्वंस करे वह अगस्त्य "अगा[न्]
विघ्नान् अस्यति विध्वंसयति यः सोऽगस्त्यः" वेद में आ[या]
है कि अगस्त्यो यन्वा विश आजभार। ७। ३३। १०।
वसिष्ठ को अगस्त्य प्रजाओं के निकट लेजाते हैं अर्था[त्]
ब्रह्मक्षत्रसभा से निश्चित धर्म्म नियम को साथ ले अग-
स्त्य (प्रचारकगण) प्रजाओं के समस्त विघ्नों को विध्वं[स]

कर देते हैं अतः प्रचार वा प्रचारकमण्डल का नाम यहां अगस्त्य कहा है। उर्वशी जिस को बहुत आदमी चाहें वह उर्वशी "याम् उरवो बहव उशन्ति कामयन्ते सा उर्वशी"। पाठशाला, न्यायशाला आदि संस्थाओं को जहां २ बहुत आदमी मिलकर स्थापित करना चाहते हैं वहां २ ब्रह्म-क्षत्रसभा की ओर से वह २ संस्था स्थापित होती है। अतः यहां संस्था का नाम उर्वशी है ॥

आवश्यक नियम—वसिष्ठ अगस्त्य और उर्वशी आदि शब्द वेदों में अनेकार्थ प्रयुक्त हुए हैं। किन्तु अपने २ प्रकरण में वही एक अर्थ सदा स्थिर रहेगा अर्थात् जहां मैत्रावरुण वसिष्ठ कहा जायगा उस प्रकरण भर में यही अर्थ होगा और ऐसे ही अर्थको लेकर संगति भी लगती है ॥

वसिष्ठ राजपुरोहित कैसे हुए—अब आप इस बात को समझ सके हैं कि वसिष्ठ राजपुरोहित कैसे बने। यह प्रत्यक्ष बात है कि नियम बनाने वाले का ही प्रथम शासक नियम होता है अर्थात् जो विद्वान् नियम बनाता है वही प्रथम पालन करता है यदि ऐसा न हो तो वह नियम कदापि चल नहीं सका मित्र वरुण अर्थात् ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों मिलकर नियम बनाते हैं अतः प्रथम इनकाही वह शासक होता है। जिस कारण ब्रह्मवर्ग में स्वभावतः नियम पालन करने की शक्ति है। वे उपद्रवी कदापि नहीं हो सके क्योंकि परम धर्म्मात्मा पुरुष का ही

नाम ब्रह्म है। क्षत्रवर्ग सदा उद्दण्ड उच्छृंखल आततायी अविवेकी हुआ करते हैं अतः इनके लिये धर्म्म नियमों की बड़ी आवश्यकता है जिनसे वे सुदृढ़ होकर अन्याय न कर सकें। आजकल भी पृथिवी पर देखते हैं कि क्षत्रवर्ग ही परम उद्दण्ड होरहे हैं, इनको ही वश में लाने के लिये बड़ी २ सभा कर प्रजाओं से मिल ब्रह्मवर्ग नियम स्थापित कर रहे हैं अतः वह वसिष्ठ नामी नियम विशेषकर क्षत्रियकुलों का ही पुरोहित हुआ। पुरोहित शब्द का यही प्राचीन अर्थ है कि जो सदा आगे में रहे जिससे सम्राट् भी डरे। जिसका अनिष्ट महा सम्राट् भी न कर सक्ता हो। जिसके पक्ष में सब प्रजाएँ हों, जो प्रजाओं के प्रतिनिधि होकर सदा उनकी हित की बात करे और राजा को कदापि उच्छृङ्खल न होने दे। जैसे आजकल रक्षित राज्यों को वश में रखने के लिये रेजिडेण्ट हुआ करता है।

मित्र और वरुण।

जैसे बहुत स्थलों में ब्रह्म और क्षत्र शब्द साथ आते हैं तद्वत् मित्र और वरुण शब्द भी पचासों मन्त्रों में साथ साथ प्रयुक्त हुए हैं। कहीं असमस्त और कहीं समस्त। समस्त होने पर मित्रावरुण ऐसा रूप बन जाता है। मित्र और वरुण के दो एक उदाहरण मात्र से आप को ज्ञात होजायगा कि यह ब्रह्मक्षत्र का वर्णन है। यथा—

मित्रं हुवे पूतदक्षं वरुणं च रिसादसम्।
धियं घृताचीं साधन्ता। ऋ०। १। २। ६॥

पूतदक्ष=पवित्र बल, जिस का बल परम पवित्र है। रिसादस=रिस+अदस्। रिस=हिंसक+पुरुष। अदस्= भक्षक। हिंसकों का भी भक्षक। धी=कर्म्म, ज्ञान। घृताची=घृतवत् शुद्ध घृतवत् पुष्टिकारक आदि। अथ मन्त्रार्थ—(पूतदक्षं+मित्रम्+रिसादसम्+वरुणञ्च+हुवे) पवित्र बलधारी मित्र और दुष्ट हिंसकों के विनाशक वरुण को बुलाता हूं जो दोनों (घृताचीं+धियं+साधन्ता) घृतवत् पवित्र ज्ञान को फैला रहे हैं। घृतवत् विचाररूप दूध से उत्पन्न ज्ञान घृताची है॥

मित्र और वरुण के सम्बन्ध में राजा सम्राट् आदि शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं यथा—

महान्ता मित्रावरुणा सम्राजा देवावसुरा। ऋतावाना वृतमा घोषतो बृहत्॥७॥ ऋतावाना नि षेदतुः साम्राज्याय सुक्रतू। घृतव्रता क्षत्रिया क्षत्रमाशतुः॥८॥ ऋ०। ८। २५॥

(मित्रावरुणा+महान्ता) ये मित्र और वरुण महान् हैं (सम्राजा) सम्राट् हैं (देवौ+असुरा) देदीप्यमान और असुर=निखिल अज्ञान के निवारक हैं (ऋतावानौ) सत्य-

वान् हैं और (बृहत् + ऋतम् + आघोषतः) महान् सत्य की घोषणा करते हैं ॥९॥ (ऋतावानौ + सुक्रतू) स्वयं सत्यनियम में बद्ध और सदा शोभन कर्म में परायण मित्र और वरुण (साम्राज्याय + निषेदतुः) साम्राज्य सम्बन्धी विचार के लिये बैठते हैं। पुनः वे कैसे हैं। (धृतव्रता) सत्यादि व्रतधारी पुनः (क्षत्रिया) परमबलिष्ठ और (क्षत्रम् + आशतुः) जो परमबल का अधिष्ठाता है ॥८॥ पुनः केवल वरुण के विषय में वर्णन आता है ॥

नि षसाद धृतव्रतो वरुणः पस्त्यास्वा। साम्राज्याय सुक्रतुः ॥१०॥ परिस्पशो निषेदिरे॥ ऋ० १। २५। १३॥

(पस्त्यासु) पस्त्या=प्रजा। प्रजाओं के मध्य (साम्राज्याय) राज्य नियम स्थापित करने के लिये वह वरुण व्रतधारी हो बैठता है। इसके चारों तरफ दूतगण बैठते हैं॥

यहां देखते हैं कि धर्म के नियमों को बनाने हारे व्यवस्थापकों को जिस २ योग्यता की आवश्यकता है उस २ का यहां निरूपण है। प्रथम सत्य की बड़ी आवश्यकता है अतः मित्र और वरुण के विशेषण में जितने ऋत वा सत्यवाचक शब्द प्रयुक्त हुए हैं उतने अन्य इन्द्रादिकों के लिये नहीं। पुनः अपने व्रत में दृढ़ होना चाहिये अतः धृतव्रत शब्द के प्रयोग भी भूयोभूयः आता है।

पुनः व्यवस्थापकों को अध्यात्म बल भी अधिक चाहिये अतः क्षत्रिय शब्द आता है इस प्रकार ज्यों २ विचारते हैं त्यों २ यही प्रतीत होता है कि मित्र और वरुण नाम ब्रह्म-क्षत्र का है। इसी ब्रह्म-क्षत्र का पुत्र वसिष्ठ है। पुनः वेदों को देख मीमांसा कीजिये भ्रम में मत पड़िये। वसिष्ठ कोई व्यक्ति विशेष नहीं किन्तु सत्यार्थ का ही नाम वसिष्ठ है। सत्य नियम ही क्षत्रियों का भी शासक है॥

एक बात और यहां दिखाने के लिये परम आवश्यक है कि धर्म्म ही क्षत्र का भी क्षत्र है अर्थात् परम उद्दण्ड राजाओं को वश में करने हारा केवल धर्म्मनियम है। वह यह है—

स नैव व्यभवत्तच्छ्रेयोरूपमत्यसृजत धर्म्मं तदेतत् क्षत्रस्य क्षत्रं यद्धर्म्मस्तस्माद्धर्म्मात्परं नास्त्यथो अबलीयान् बलीयांसमाशंसते धर्मेण यथा राज्ञैवं यो वै स धर्म्मः सत्यं वै तत्तस्मात् सत्यं वदन्तमाहुर्धर्म्मं वदतीति धर्म्मं वा वदन्तं सत्यं वदतीत्येतद्ध्येवैतदुभयं भवति॥ बृ०उ० १।४।१४॥

आशय—बृहदारण्यकोपनिषद् में यह वर्णन आता है कि जब ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मणवर्ग, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र को बना चुके तौभी देश की वृद्धि नहीं हुई। तब अत्यन्त कल्याणस्वरूप जो धर्म्म है उसको सबसे बढ़िया बनाया। क्षत्र का भी शासक वही धर्म्म हुआ अतः धर्म्म से परे कोई पदार्थ नहीं। जैसे राज्य की सहायता से वैसे ही

धर्म्म की सहायता से एक महादुर्बल पुरुष भी परम बलि
पुरुष का साम्मुख्य करता है। वह धर्म्म सत्य ही है। अ
सत्य बोलनेहारे को देखकर लोक कहते हैं कि यह ध
कह रहा है। इसी प्रकार धर्म्म के व्याख्याता को सत्
वादी कहते हैं ॥

यहां पर यह वर्णन आता है कि क्षत्रियों के
शासक धर्म्मनियम हैं। इन नियमों में बद्ध होकर य
कोई क्षत्रिय अन्याय करे तो प्रजाएँ उस को तत्काल रो
देती हैं। अब आप समझ सकते हैं कि वसिष्ठ के अर्थ
समस्त राजवंश कैसे हुए। निःसन्देह ब्राह्मण और क्षत्रि
वर्गों से निर्धारित जो धर्म्म व्यवस्था है उस का पाल
यदि कोई न करे तो कब उसे कल्याण है अतः स
राजाओं ने वसिष्ठ नामधारी धर्मनियम को ही अप
पुरोहित बनाया ॥

वसिष्ठ और चोरी।

ऋग्वेद के सम्पूर्ण सप्तम मण्डल के द्रष्टा वसिष्ठ
बहुत थोड़े से मन्त्रों के द्रष्टा वसिष्ठपुत्र भी माने जाते हैं
इसी मण्डल में वसिष्ठ सम्बन्धी बहुतसी प्रचलित वार्ता
का बीज पाया जाता है। "अमीवहा वास्तोष्पते" इत्या
५५वें सूक्त को प्रस्वापिनी उपनिषद् नाम से अनुक्रमणि
कार लिखते हैं। बृहद्देवता इसके विषय में विलक्षण क
गढ़ती है वह यह है—"एक समय वरुण के गृह पर व

गए। इनको काटने के लिये भौंकता हुआ एक महाबलिष्ठ कुत्ता पहुंचा। तब वसिष्ठ ने "यदर्जुन" इत्यादि दो मन्त्रों को पढ़कर उस को सुलाया और पश्चात् अन्यान्य मन्त्रों से वरुणसम्बन्धी सब मनुष्यों को भगा दिया" कोई आचार्य्य इस सूक्त पर यह आख्यायिका कहते हैं। "एक समय तीन रात्रि तक वसिष्ठ को भोजन न मिला तब चौथी रात्रि चोरी करने को वरुण के गृह पहुंचे। द्वार पर बहुतसे आदमी और कुत्ते सोए हुए थे। इनको सुलाने के लिये वसिष्ठजी ने इस ५५वें सूक्त को देखा और उसका जप किया" इत्यादि बातें सायण ने इस सूक्त के भाष्य के आरम्भ में ही दी हैं अतः प्रथम सूक्त के शब्दार्थ कर आशय बतलाऊंगा॥

अमीवहा वास्तोष्पते विश्वारूपाण्या-विशन्। सखा सुशेव एधि नः॥ १॥

ऋ० ७। ५५॥

अमीवहा=अमीव+हा। अमीव=रोग। हा=नाशक। वास्तोष्पते=वास्तोः+पते। वास्तु=गृह। संसाररूप गृहपति परमात्मा। यहां कोई उपासक कहता है कि (वास्तोः+पते) हे गृहाधिदेव! समस्त गृहों में निवास करने हारे परमात्मन्! (अमीवहा) आप मानसिक आत्मिक तथा दैहिक सर्व रोग के निवारक हैं (विश्वा+रूपाणि+आविशन्) आप सर्व रूपों में प्रविष्ट हैं। हे भगवान्! (सखा) मित्रवत् परमप्रिय

और (सुशेवः) परम सुखकारक (नः+एधि) हमारे लि
हूजिये। इतनी ईश्वर से प्रार्थना कर अब आगे कहते हैं कि-

यदर्जुन सारमेय दतः पिशङ्ग यच्छसे
वीव भ्राजन्त ऋष्टय उप स्रक्केषु बप्सतो नि
स्वप ॥ २ ॥ स्तेनं राय सारमेय तस्करं
पुनःसर । स्तोतॄनिन्द्रस्य रायसि किमस्मान्
च्छुनायसे नि षु स्वप ॥३॥ त्वं सूकरस्य दर्दृ
तवदर्दर्तु सूकरः । स्तोतॄनिन्द्रस्य० ॥ ४ ॥

ऋ० ७ । ५५

अर्जुन=श्वेत, सफेद । सारमेय=सरमा का पुत्र
देवशुनी का नाम सरमा है, दत्=दांत ऋष्टि=आयुध, अ
राय=जाओ । रायसि=गच्छसि=जाते हो। अथ मन्त्रार्थ
(अर्जुन+सारमेय) हे श्वेत सारमेय ! (पिशङ्ग) हे कहीं
पिंगलवर्ण ! कुत्ते (यद्+दतः+यच्छसे) जब तुम अ
दांतों को दिखलाते हो तब वे दांत (स्रक्केषु+उप) ओष्ठ
कोने में (ऋष्टयः+इव+वि+भ्राजन्ते) आयुध के सम
चमकने लगते हैं और (बप्सतः) हम को खानेके लि
दौड़ते हो ॥ २ ॥ (सारमेय+पुनःसर) हे सारमेय !
पुनःसर ! पुनः २ मेरी ओर आने हारे कुत्ते ! (स्तेनं
तस्करम्+राय) तू चोर की ओर जा। (इन्द्रस्य+स्तोतॄन्
अस्मान्+किम्+रायसि) परमात्मा के स्तुतिपाठक हमा

ओर तू क्यों आता है और (दुच्छुनायसे) क्यों हम को बाधा देता है (नि+सु+स्वप) हे कुत्ते! तू अत्यन्त सोजा ॥३॥ (त्वम्+सूकरस्य+दर्द्दृहि) तू सूकर को काटखा (सूकरः +तव+दर्दर्तु) और सूकर तुझ को काट खाय (इन्द्रस्य+ स्तोतॄन्०) इत्यादि पूर्ववत् ॥४॥

सस्तु माता सस्तु पिता सस्तु श्वा सस्तु विश्पतिः। ससन्तु सर्वे ज्ञातयः सस्त्वय मभितोजनः ॥५॥ य आस्ते यश्चरति यश्च पश्यति नोजनः। तेषां संहन्मो अक्षाणि यथेदं हर्म्यं तथा ॥ ६ ॥ ऋ० ७। ५५ ॥

(माता+सस्तु+पिता+सस्तु) हे सारमेय! तेरे माता पिता सोजांय। जो यह बड़ा कुत्ता है वह भी सोजाय। (विश्पतिः) जो गृहपति है वह भी सोजाय इस प्रकार सबही ज्ञाति और चारों तरफ के आदमी सोजांय। जो बैठा है जो चल रहा है जो हम को देखता है उन सब की आंखों को हम फोड़ते हैं। वे सब राजगृह के समान अचल होवें ॥६॥

प्रोष्ठेशयाः वह्येशया नारीर्यास्तल्पशीवरीः। स्त्रियोयाः पुण्यगन्धास्ताः सर्वाः स्वापयामसि ।८।
ऋ० ७। ५५ ॥

(याः+ नारीः+प्रोष्ठेशयाः) जो स्त्रियां आंगन में सोगई हैं (वह्येशयाः) जो किसी बिछौने पर सोई हुई हैं (तल्प-

शीवरीः) जो पलंग पर सोई हुई हैं (याः + स्त्रियः + पुण्य-गन्धाः) जो स्त्रियां पुण्य गन्धवाली हैं (ताः + सर्वाः + स्वापयामसि) उन सब को मैं सुलाता हूं ॥ ८ ॥

आशय—सरतीति सरमा। भोगविलास की ओर दौड़नेहारी जो यह महातृष्णा है यही शुनी याने कुत्ती है और इसी कुत्ती के ये आंख कान आदि इन्द्रिय गुलाम हैं अतः इस का नाम सारमेय है। अर्जुन=श्वेत। इन इन्द्रियों में कोई श्वेत=सात्त्विक और कोई पिशंग अर्थात् राजस तामस नाना वर्ण के हैं। ये दोनों प्रकार के इन्द्रिय परम दुःखदायी हैं। और यह भी प्रत्यक्ष है कि इन्द्रियों का व्यवहार कुत्ते के समान है। अतः कोई उपासक प्रार्थना करता है कि हे कुत्ते के समान इन्द्रियगण! मुझे तुम क्यों दुःख देते हो। तुम सोजाओ अर्थात् शिथिल होजाओ। तुम जानते नहीं कि हम परमात्मा के उपासक हैं फिर तुम कैसे हम को काट सकते हो तुम सो ही जाओ। मैं इन सब कुत्तों की आंखे फोड़ डालता हूं इत्यादि। इस से जो कोई सचमुच कुत्ते को सुलाने का भाव समझते हैं वे बड़े अज्ञानी हैं। क्या मन्त्र पढ़ने से कुत्ते सो जायंगे? वेद के गूढ़ २ आशय को न समझ कैसी अज्ञानता लोगों ने फैलाई है। यहां सारमेय आदि शब्द इन्द्रिय-वाचक हैं। और "मैं स्त्रियों को सुलाता हूं" इस का आशय यह है कि जब इन्द्रियगण अति प्रबल होते हैं तब सबसे पहले स्त्रियों की ओर दौड़ते हैं। विषयी पुरुषों के लिये यह

एक महाविषवल्ली है। अतः उपासक कहता है कि "मैं सब स्त्रियों को भी सुलाता हूं" अर्थात् परमात्मा से प्रार्थना है कि स्त्रियों की ओर भी मेरा मन न जाय इत्यादि इस का सुन्दर भाव है। इससे चोरी की कथा गढ़नेहारे कदापि वेद नहीं समझ सकते। इसमें वसिष्ठ की कहीं भी चर्चा नहीं। यदि मान लिया जाय कि इस मण्डल के द्रष्टा वसिष्ठ होने से वसिष्ठ ही ऐसी प्रार्थना करते हैं तौ भी कोई क्षति नहीं। मैं वैदिक इतिहासार्थ निर्णय में विस्तार से दिखला चुका हूं कि वैदिक पदार्थानुसार ऋषियों के नाम दिये जाते हैं जिस कारण वसिष्ठ अर्थात् सत्यधर्म्म की व्यवस्था का विषय इस मण्डल में है अतः इसके द्रष्टा का नाम भी वसिष्ठ हुआ। सब को ऐसी प्रार्थना नित्य ही करनी चाहिये इत्यलम् ॥

वसिष्ठ सम्बन्धी अन्यान्य कथाओं के बीज—सर्वानुक्रमणी, बृहद्देवता, यास्ककृतनिरुक्त और ताण्ड्य महाब्राह्मण आदि ग्रन्थों में भी बहुतसी कथाओं के बीज पाये जाते हैं। एक स्थल में यास्क कहते हैं कि "वसिष्ठोवर्षकामः पर्जन्यं तुष्टाव। तं मण्डूका अन्वमोदन्ते। स मण्डूकाननुमोदमानान् दृष्ट्वा तुष्टाव"। निरुक्त ९। ६। वर्षा की इच्छा से वसिष्ठ मेघ की स्तुति करने लगे, मण्डूकों ने अर्थात् मेंडकों ने उनके वचन का अनुमोदन किया, अनुमोदन करते हुए मेंडकों को देख वसिष्ठजी उन की ही

स्तुति करने लग गए। और इनकी स्तुति में १०३वें सूक्त को देखा। हां, इस सूक्त में मण्डूकों का वर्णन तो अवश्य ही है किन्तु वसिष्ठजी मण्डूकों की स्तुति करने लग गए यह कथा इसमें कहीं भी नहीं है ॥

दूसरी जगह यास्क कहते हैं कि "पाशा अस्यां व्यपाश्यन्त वसिष्ठस्य मुमूर्षतस्तस्माद् विपाडुच्यते" मरने की इच्छा करते हुए वसिष्ठ के पाश इस नदी में टूटे थे अतः इसको विपाट् कहते हैं। ऋग्वेद ७। ३२ सूक्त की अनुक्रमणिका में लिखा है कि "सौदासैरग्नौ प्रक्षिप्यमाणः शक्तिरन्त्यं प्रगाथमालेभे। सोऽर्धर्चे उक्तेऽदह्यत। तं पुत्रोक्ते वसिष्ठः समापयतेति शाट्यायनकम्। वसिष्ठस्यैव हतपुत्रस्यार्षमिति ताण्डकम्। शाट्यायन ब्राह्मण के अनुसार जब सुदा राजा के पुत्रों ने वसिष्ठ पुत्र शक्ति को अग्नि में फेंक दिया तब इसने इस सूक्त के अन्तिम प्रगाथ को पाया। किन्तु वह आधी ऋचा की समाप्ति पर स्वयं दग्ध होगया पश्चात् पुत्रोक्त को वसिष्ठ ने समाप्त किया। और ताण्ड्य ब्राह्मण के अनुसार इस अन्तिम ऋचा के भी ऋषि वसिष्ठ ही हैं। जब वसिष्ठ के पुत्र हत हुए तब इन्होंने इसको देखा। ऋ० ७। १०४वें सूक्त को लक्ष्य कर बृहद्देवता में लिखा है कि "ऋषिर्ददर्श रक्षोघ्नं पुत्रशोकपरिप्लुतः। हते पुत्र शते क्रुद्धः सौदासैर्दुःखितस्तदा"। जब वसिष्ठ के १०० सौ पुत्र मारे गये तब ऋषि ने इस १०४वें रक्षोघ्न सूक्त को

देखा । इस प्रकार की बहुतसी बातें प्राचीन ग्रन्थों में भी पाई जाती हैं । इस में सन्देह नहीं कि वेदों के यथार्थ तात्पर्य नष्ट होने पर विविध आख्यायिकाएँ रची गईं । बहुतसी कथाएँ रूपक में लिखी गईं थीं उनका भी आशय समय पाकर अज्ञात होगया । मैं अब महाभारतादि में जो वसिष्ठ सम्बन्धी वार्त्ता पाई जाती है उसको दिखलाऊँगा वह भी गूढ़ आशय प्रगट करती है अतः ध्यान से पढ़िये और इसके तात्पर्य्य को अच्छे प्रकार विचारिये ॥

विश्वामित्र का वंश—वेदों में विश्वामित्र शब्द के प्रयोग बहुत आए हैं * । जैसे लोक में विश्वामित्र कौशिक कहाते हैं वैसे वेद में "कुशिकस्य सूनुः" ऐसा प्रयोग है

---

* महाँ ऋषिर्देवजा देवजूतोऽस्तभ्नात्सिन्धुमर्णवं नृचक्षाः। विश्वामित्रो यदवहद् सुदासमप्रियायत कुशकेभिरिन्द्र ॥ ६ ॥ विश्वामित्रा अरासत महेन्द्राय वज्रिणे ॥ १३ ॥ ऋग्वेद ३ । ५३ ॥ जन्मन् जन्मन् निहितो जातवेदा विश्वामित्रेभिरिध्यते अजस्रः ॥ ऋ० ३ । १ । २१ । इत्यादि यहां भी कुशिक और विश्वामित्र का सम्बन्ध देखते हैं । एक सूक्त के विश्वामित्र और जमदग्नि दोनों ऋषि हैं और ऋचा में भी दोनों नाम आए हैं यथा "सुते सातेन यद्यागमं वां प्रति विश्वामित्रजमदग्नीदमे" ऋ० १० । १६७ । ४ । पुराणों के अनुसार विश्वामित्र की बहिन सत्यवती के पुत्र

किन्तु वैदिक आशय क्या है इसका संक्षेप वर्णन चतुर्दश-भुवन में देखिये। वेदों में विश्वामित्रादिकों की न कोई वंशावली और न कोई अनित्य इतिहास है। वसिष्ठ और विश्वामित्र की शत्रुता का गन्ध भी वेदों में नहीं पाया जाता। सुप्रसिद्ध ऐतरेय शतपथादि ब्राह्मण ग्रन्थों में भी इन दोनों के वैर की कोई चर्चा नहीं। महाभारत वाल्मीकीय रामायण से लेकर आधुनिक ग्रन्थ तक वैसी चर्चा पाई जाती है। मैं वारम्वार लिख चुका हूं कि महाभारत पुराणादि में भी शतशः गाथाएँ केवल रूपकालङ्कार में लिखी गई हैं जिनको आजके कतिपय पुरुष तथ्य मान इतिहास समझते हैं। इस में भी किञ्चिन्मात्र सन्देह नहीं कि उन रूपितालङ्कारों का स्वरूप बहुत परिवर्तित होता चला आया है जिस से झटिति सत्यता का पता नहीं लगता। महाभारत आदि पर्व अध्याय १७४ में लिखा है "कान्यकुब्जे महानासीत्पार्थिवो भरतर्षभ। गाधीति विश्रुतो लोके कुशिकस्यात्मसंभवः। तस्य धर्म्मात्मनः पुत्रः समृद्धबलवाहनः। विश्वामित्र इति ख्यातो बभूव रिपुमर्दनः" कान्यकुब्ज देश के राजा कुशिक के पुत्र गाधि हुए* और गाधि के पुत्र

जमदग्नि हैं अर्थात् विश्वामित्र के भागिनेय (भांजा) जमदग्नि हैं। किन्तु वेदों में इस सब का अध्यात्म तात्पर्य्य है। "विश्वामित्र ऋषिः" ऐसा पद यजुर्वेद १३। ५७ में आया है शतपथ इसका अर्थ करता है 'श्रोत्रं वै विश्वामित्र ऋषिः'। ८। १॥

*प्राचीन ग्रन्थों में गाधि के स्थान में गाथी शब्द आताहै।

विश्वामित्र हुए। परन्तु वाल्मीकि रामायण के बालकाण्ड सर्ग ३४ में* लिखा है कि ब्रह्मा के पुत्र कुश के वैदर्भी नाम की स्त्री में कुशाम्ब, कुशनाभ, अमूर्तरजा और वसु नाम के चार पुत्र हुए। कुशनाभ के पुत्र गाधि और गाधि के पुत्र विश्वामित्र हुए। श्रीमद्भागवत नवम स्कन्ध १५ वें तथा प्रथम अध्याय में लिखा है कि ब्रह्मा के पुत्र मरीचि। मरीचि के पुत्र कश्यप। कश्यप के पुत्र विवस्वान्। विवस्वान् के पुत्र मनु। मनु के पुत्र सुद्युम्न। सुद्युम्न के पुत्र पुरूरवा। पुरूरवा के पुत्र विजय। विजय के पुत्र भीम। भीम के पुत्र काञ्चन। काञ्चन के पुत्र होत्र। होत्र के पुत्र जह्नु। जह्नु के पुत्र पुरु। पुरु के पुत्र बलाक। बलाक के पुत्र अजक। अजक के पुत्र कुश। कुश के पुत्र कुशाम्बु। कुशाम्बु के पुत्र गाधि और गाधि के पुत्र विश्वामित्र हैं। महाभारत रामायण और भागवत को मिलाइये वंशावली में कितना भेद है। तब किस प्रकार यह इतिहास माना जाय और ये ग्रन्थ सत्य माने जांय। महाभारत का झुकाव वेदार्थ की ओर रहता है। भागवत आदि उसका यथार्थ इतिहास बना देते हैं।

कान्यकुब्ज देश—इस देश का कान्यकुब्ज नाम कैसे हुआ इस की कथा वाल्मीकि रामायण में विस्तार से उक्त

---

* सर्ग अध्याय आदि का पता आज कल बड़ा गड़बड़ हो रहा है अतः ग्रन्थ देखकर पता लगालेना उचित है।

है। "कुशनाभस्तु राजर्षिः कन्याशत मनुत्तमम् । जनयामास धर्म्मात्मा घृताच्यां रघुनन्दन॥११॥ रा०। बा०। सर्ग ३४। राजा कुशनाभ की घृताची नाम की स्वर्गवेश्या में १०० एक सौ कन्याएँ उत्पन्न हुईं। वायु देवता शत कन्याओं को एक समय उद्यान भूमि में देख अति व्याकुल हो इन से बोले कि आप सब ही मेरे साथ विवाह कर लीजिये। कन्याओं ने मिलकर कहा कि "अन्तश्चरसि भूतानां सर्वेषां किल मारुत । प्रभावज्ञाः स्म ते सर्वाः किमस्मानवमन्यसे॥ ३४। १८। हे मारुत ! आप सब प्राणियों के भीतर विचरण कर रहे हैं आप का प्रभाव हम जानती हैं। हमारा निरादर क्यों आप करते हैं। कुशनाभ की हम कन्याएँ हैं। अपने कुलमर्य्यादा की रक्षा कर रही हैं। पिताजी हम को जिन के हाथ में समर्पित करेंगे वेही हमारे स्वामी होंगे। इत्यादि वहुत वादानुवाद करने से वायु देव कुपित होके "तासां तद्वचनं श्रुत्वा वायुः परमकोपतः । प्रविश्य सर्वगात्राणि वभञ्ज भगवान् प्रभुः" ॥२२॥ उन कन्याओं के गात्रों में पैठ तोड़ मरोड़ कर उन कन्याओं को कुब्जाएँ वनादीं। "यद्वायुनाच ताः कन्यास्तत्र कुब्जी कृताः पुरा । कान्यकुब्जमितिख्यातं ततः प्रभृति तत्पुरम्" ॥ ३९ ॥ जिस कारण वायु ने उन कन्याओं को वहां कुब्जाएँ करदीं अतः उस नगर का नाम कान्यकुब्ज हुआ। पश्चात् इन १०० शत कन्याओं का विवाह चूली

राजा के पुत्र ब्रह्मदत्त से हुआ है। ऐसे २ शतशः गप्प रामायण महाभारत में भी बहुत से भरे पड़े हुए हैं। यह ब्रह्मदत्त भी किसी गन्धर्वी के उदर से व्यभिचार से उत्पन्न हुआ था ॥

विश्वामित्र और वसिष्ठ का आश्रम—महाभारत आदि पर्व अध्याय १७४ में लिखा है कि एक समय विश्वामित्र अरण्य में शिकार करते हुए प्यास से अति व्याकुल हो वसिष्ठजी के आश्रम में पहुंचे। वाल्मीकि-रामायण में भी बालकाण्ड अध्याय ५१ से इस कथा को देखो। राजा को आए हुए देख वसिष्ठजी यथाविधि सत्कार कर बोले कि हे राजन् विश्वामित्र! आज रात्रि आप ससेन मेरी कुटी को सुशोभित कीजिये, विश्वामित्र ने कहा कि आप वन में तपस्वी हो सत्य की उपासना कर रहे हैं। मेरे साथ बहुत से आदमी हैं अतः क्षमा मांगता हूं इस समय मुझे जाने की आज्ञा दीजिये। वसिष्ठ के वारम्वार हठ करने पर विश्वामित्र ठहर गए। सब कोई चिन्ता करने लगे कि ऋषि के निकट इतनी धन सामग्री कहां से आवेगी, कैसे इतनी सेना को खिला सकेंगे। न कहीं किसी को पकाते हुए देखते न आग न पानी न आसन न वासन। क्या यह ऋषि दिल्लगी तो नहीं कर रहे हैं। रात्रि में हम सब भूखे तो नहीं मरेंगे। इस प्रकार के संकल्प विकल्प से व्याकुल हो ही रहे थे कि वसिष्ठजी की आज्ञा से यथा योग्य आसन पर विश्वामित्र और सेना के सब

पुरुष बैठाए गए। वे आश्चर्य से देखते हैं कि जिस की जिस पदार्थ पर रुचि है वही पदार्थ उस की पत्तल पर परोसा हुआ है। राजा विश्वामित्र को भी विस्मय होरहा है, ऐसे २ त्रिलोक दुर्भल, विविध प्रकार के लेह्य, चोष्य, पेय, भोज्य, भोजन कहां से आते हैं। भोजन कर सुसंतुष्ट हुए। किन्तु ऋषि की ऐसी अचिन्त्य विभूतियों को देख विश्वामित्र अति अस्तव्यस्त हो शबला नन्दिनी कामधेनु की सिद्धि का पता लगा वसिष्ठ के निकट जा बोले कि हे ऋषे! 'अर्बुदेन गवां ब्रह्मन् मम राज्येन वा पुनः। नन्दिनीं सं प्रयच्छस्व भुंच्व राज्यं महामुने'। महाभारत। 'ददाम्येकां गवां कोटीं शबला दीयतां मम'। रामायण॥ आप एक अर्बुद गायें लेवें। सम्पूर्ण मेरा राज्य ही लेकर भोग करें किन्तु यह नन्दिनी गौ मुझे दे दीजिये। मैं राजा हूं। मैं इस गौ से बहुत उपकार कर सकूंगा। आप को ऐसी गाय से क्या प्रयोजन। वसिष्ठ ने बहुत समझा कर कहा कि यह नन्दिनी कदापि मुझ से अलग नहीं हो सकती आप जैसा चाहें सो करें॥

विश्वामित्र उवाच—क्षत्रियोऽहंभवान् विप्रस्तपःस्वाध्यायसाधनः। ब्राह्मणेषु कुतो वीर्यं प्रशान्तेषु धृतात्मसु॥ अर्बुदेन गवां यस्त्वं न ददासि ममेप्सितम्। स्वधर्म्मं न प्रहास्यामि नेष्यामि च बलेन गाम्॥ वसिष्ठउवाच—बलस्थश्चासि राजा च बाहुवीर्य्यश्च क्षत्रियः। यथेच्छसि तथा क्षिप्रं कुरु मा त्वं विचारय॥ महा०॥ विश्वामित्र ने कहा

कि मैं क्षत्रिय हूं आप ब्राह्मण हैं। आप में वीर्य्य कहां! एक अर्बुद गौ देने पर भी यदि आप इस नन्दिनी को नहीं देते हैं तो मैं भी अपना धर्म्म न छोड़ूंगा बलात् गौ ले जाऊंगा। यह सुन वसिष्ठ ने कहा एवमस्तु आप जैसा चाहें शीघ्र ही वैसा कीजिये। विश्वामित्र बहुत विवाद के पश्चात् नन्दिनी को खोल कोड़े से खूब पीटते हुए अपनी सेना से लिवा चले। वह नन्दिनी हुंकार भरती हुई वसिष्ठ के पास आकर बोली कि क्या आप मुझे त्यागते हैं इस पर वसिष्ठ ने कहा कि "क्षत्रियाणां बलं तेजो ब्राह्मणानां क्षमा बलम्। क्षमा मां भजते यस्माद् गम्यतां यदि रोचते"। म० आ०। १७५॥ क्षत्रियों का बल तेज और ब्राह्मणों का बल क्षमा है। मुझे क्षमा प्राप्त है। यदि तेरी रुचि हो तो जा। मैं तुझे त्यागता नहीं यदि तू अपने बल पर ठहर सकती है तो रहजा। मैं इस में कुछ नहीं कहता। ऐसी इच्छा वसिष्ठ की देख क्रोधाग्नि से सूर्य्य की ज्वाला के समान देदीप्यमाना हो वह नन्दिनी अपनी सिद्धि के बल से पह्लव, द्राविड, शक, यवन, शवर, कांचि, शरभ, पौण्ड्र, किरात, सिंहल, वर्बर, वश, चिवक, पुलिंद, चीन, हून, केरल और म्लेछों के शतशः गणों को पैदाकर विश्वामित्र की सेना के साथ युद्ध करने लगी। महाभारत आदि पर्व १७५। क्षण मात्र में विश्वामित्र की सेना छिन्न भिन्न हो इतस्ततः भाग गई। विश्वामित्र को बड़ा ही पश्चात्ताप हुआ "धिग् बलं क्षत्रियबलं ब्रह्मतेजोबलं बलम्"

ऐसा कहते हुए राज्य त्याग वह तप करने को चले गए। पश्चात् ब्राह्मणत्व को प्राप्त हुए इत्यादि कथा इस समय घर २ प्रसिद्ध है ॥

वसिष्ठ के पुत्रों को मरवाना—परास्त हो तप करते हुए भी विश्वामित्र वसिष्ठ के अनिष्ट करने से विमुख नहीं हुए। प्रथम राजा कल्माषपाद को अपने पक्ष में कर उस से वसिष्ठ के पुत्र शक्ति को विश्वामित्र ने मरवाया पुनः "शक्तिं तन्तु मृतं दृष्ट्वा विश्वामित्रः पुनः पुनः। वसिष्ठस्यैव पुत्रेषु तद्रक्षः सन्दिदेश ह" शक्ति को मृत देख अन्य पुत्रों को खाने के लिये उस राक्षस को भेजा। वह सिंह व्याघ्र के समान वसिष्ठ के सब पुत्रों को निगल गया॥

वसिष्ठ की व्यग्रता—विश्वामित्र द्वारा अपने पुत्रों को घातित देख महा पर्वत के समान अपने तप में स्थिर रह किसी प्रकार उस शोक को वसिष्ठ धारण करते रहे किन्तु अन्ततो गत्वा परीक्षा में अनुत्तीर्ण हुए । आत्महत्या की चिन्ता करने लगे । सुमेरु पर्वत के अन्त्य शिखर पर चढ़ वहां से गिरे किन्तु शिलाओं का ढेर उनके लिये तूलराशि होगए, उस पतन से वे न मरे । तब वह अग्नि को प्रज्वलित कर उसमें जा घुसे किन्तु अग्निदेव इन्हे भस्म करने में सर्वथा असमर्थ रहे । तब बहुत बड़ी शिला कंठ में बांध समुद्र में जा कूदे । समुद्रदेव ने भी इन्हें बाहर निकाल तट पर रख दिया । इस प्रकार अपने को घा

करने में असमर्थ देख परम खिन्न हो पुनः आश्रम लौट आए। वहां भी पुत्रों से आश्रम को शून्य देख व्याकुल हो पृथिवी पर भ्रमण ही करने लगे ॥

विपाशा और शतद्रु—इतने में ही वर्षा ऋतु आगई जल से नदियों को खूब भरी देख अपने अंगों को पाशों (फांसों) से बांध किसी एक नदी में जा गिरे किन्तु वह नदी ऋषि के प्रताप से डर सब पाशों को काट उनको तट पर लेआई। "उत्ततार ततः पाशैर्विमुक्तः स महानृषिः विपाशेति च नामास्या नद्याश्चक्रे महानृषिः"। तब जिस कारण पाशों से छूट इस नदी से उत्तीर्ण हुए अतः ऋषि ने इसका नाम 'विपाशा' रख दिया। पुनः शोकान्वित हो भ्रमण करते हुए वे किसी दूसरी नदी में जा गिरे। वह नदी भी भय से अनेकमुखी हो भागगई, वे तट पर आ पहुंचे। 'सा तमग्निसमं विप्रमनुचिन्त्य सरिद्वरा। शतधा विद्रुता यस्मात् शतद्रुरिति विश्रुता'। वह नदी जिस कारण अग्निसम उस विप्र को देख शतमुख हो वहने लगी अतः तब से वह शतद्रु नाम से विख्यात हुई

वसिष्ठ का आश्वासन—तब वसिष्ठ अपने को सर्वथा अवध्य जान आश्रम को लौट आए वहां देखते हैं कि शक्ति पुत्र के समान ही कोई वेद पढ़ रहा है। शक्ति की स्त्री अदृश्यन्ती थी। इसी से एक बालक का वेद पढ़ता हुआ द्वादश वर्ष के पश्चात् जन्म हुआ "अदृश्यन्त्युवाच।

ममं कुक्षौ समुत्पन्नः शक्तेर्गर्भः सुतस्य ते। समा द्वादश तस्येह वेदानभ्यसतोमुने"। अदृश्यन्ती ने कहा हे मेरे परम पूज्य पितृवदाराध्यदेव! आपके पुत्र से मेरी कुक्षि (पेट) में यह बालक उत्पन्न हुआ है। वसिष्ठजी वंशधर सन्तान देख पुनः स्वप्रकृतिस्थ हुए और उसका नाम पराशर रक्खा और जिस राजा कल्माषपाद ने विश्वामित्र के कहने से वसिष्ठ के पुत्रों को खाया था उसको भी अपने वश में लाए॥

कल्माषपाद कौन है—श्रीमद्भागवत ९।९ में सुदास राजा का पुत्र कल्माषपाद कहा गया है। इसका पहला नाम मित्रसह है। उन्हों ने वन में किसी एक राक्षस को माराथा। उसका भाई बदला लेने के अभिप्राय से पाचक का रूपधर इसी राजा के यहां रसोइया नियुक्त हुआ। इसने गुरु वसिष्ठ को एक दिन मानवमांस खिला दिया इस पर परम क्रुद्ध हो वसिष्ठ ने राजा को शाप देदिया कि तू राक्षस हो जा। राक्षस होने पर उसका पैर कल्माष अर्थात् नाना रंगवाला या काला होगया तबसे कल्माष-पादही कह[illegible] लगा। महाभारत में लिखा है कि वसिष्ठ पुत्र शक्ति और कल्माषपाद रास्ते के लिये लड़ने लगे। राजा ने शक्ति को कोड़े से पीटा तब शक्तिने शाप दिया कि तू राक्षस हो जा। दूसरी घटना यह हुई कि किसी एक ब्राह्मणने बनमें राजा को कहा कि मुझे समांस भोजन करवाओ। राजाने कहा कि मैं राजधानी में जाके

भोजन भेजता हूं आप यहां ही प्रतीक्षा करें, वह गृह पर आकर भूलगए। दो पहर रात्रि में स्मरण कर सूद (पाचक) को बुला यह बात कही। सूदने कहा कि पाकशाला में इस समय मांस नहीं है तब राजाने कहा कि "अप्येनं नरमांसेन भोजयेति पुनः पुनः" यदि मांस नही है तो नर मांस ही सही। उस सूदने नर मांस ला पका उस विप्र के पास लेजा कर खिलाया। विप्र ने नर मांस देख राजा को राक्षस होने का शाप दिया। इन दो शापों से वह मित्र-सह राक्षस होगया। राक्षस होके प्रथम वसिष्ठ पुत्र शक्ति को ही खागया। इत्यादि कथा महाभारत आदि पर्व अध्याय १७६ में देखिये। ऋग्वेद में कल्माष वा कल्माषपाद शब्द नहीं आया है। मित्रसह शब्द का भी प्रयोग नहीं है॥

भारतीय कथा का आशय।

महाभारतादि में जैसी कथा लिखी है संक्षेप से उस का वर्णन लिखा गया है। अब इसका आशय यहां दरशाना बाकी है। इन कथाओं में कईएक उन्नति देखते हैं। वेद में शक्ति, पराशर, शक्ति की स्त्री अदृश्यन्ती आदि की कहीं चर्चा नहीं, विश्वामित्र और वसिष्ठ की शत्रुता और वसिष्ठ की नन्दिनी की कहीं गन्ध नहीं। वसिष्ठ के ऊपर वारम्वार विश्वामित्र का आक्रमण और पुनः विश्वामित्र का ब्राह्मण होना इत्यादि किञ्चिन्मात्र भी अंश वेद

में नहीं । पूर्व वर्णन से यह भी ज्ञात हुआ कि महाभारत के बहुत पहले से वसिष्ठ के सम्बन्ध में कुछ ऐसी कथाएं चली आती थीं जिन का पूरा विवरण तो कहीं इस समय नहीं मिलता किन्तु शाट्यायन और ताण्ड्य महाब्राह्मण आदिकों में किञ्चित् अंशमात्र का उपन्यास है । महाभारत स्वयं कहता है कि "इदंवासिष्ठ माख्यानं पुराणं परिचक्षते" इस वसिष्ठ आख्यान को लोक बहुत पुराण बतलाते आए हैं । अतः इसके बहुत परिवर्तन और समय समय पर न्यूनाधिक्य के कारण आशय भी बदलते गए। मैं यहां क्रमशः दो एक आशय प्रकट करता हूं—१ वसिष्ठ कौन है ? वेदों, ब्राह्मणग्रन्थों तथा उपनिषदों में इन्द्रियों को वश में लाने की कथाएँ बहुत आया करती हैं । येही देव और असुर हैं । क्षण में ही ये इन्द्रिय देव और क्षण में ही असुर बन जाते हैं । प्रत्येक आदमी अपने २ जीवन में देखता है कि इन्द्रियों का कैसा महाघोर संग्राम कभी २ हुआ करता है, इसी का नाम देवासुर संग्राम है । शुनःशेप, त्रित, दीर्घतमा आदिकों की कथा वैदिक इतिहासार्थ-निर्णय में देखिये । उसी प्रकार की रूपकालंकार में यह भी एक कथा ब्राह्मण ग्रन्थों के समय में बनाई गई है, कथाएँ इस प्रकार मिश्रित होगई हैं कि इनका पता लगाना कठिन काम है ॥

वसिष्ठ कौन है—प्राणो वै वसिष्ठ ऋषिः । यद्वै नु श्रेष्ठस्तेन वसिष्ठोऽथो यद्वस्तृतमो वसति तेनोऽएव वसिष्ठः । श०

का० ८। अ० १। ब्रा० १॥ यो वै वसिष्ठं वेद वसिष्ठो ह स्वानां भवति। वाग्वाव वसिष्ठः। छा० उ० ५। १। २॥ योह वै वसिष्ठां वेद वसिष्ठः स्वानां भवति वाग्वै वसिष्ठा। बृ० उ० ५। १॥ इत्यादि अनेक प्रमाण से सिद्ध है कि ऐसे स्थलों में इन्द्रियों का ही नाम वसिष्ठ है। यहां प्राण विशिष्ट धर्म्मनिष्ठ, वेदवाणी निपुण परम तपस्वी जीवात्मा का नाम वसिष्ठ है "मित्र एव सत्यः। वरुणएव धर्म्मपतिः"। शतपथ ५। ३। मित्र ही सत्य है और वरुण धर्म्मपति है। जब सत्यधर्म्म और धर्म्म का अधिष्ठातृ देव विवेक विचार आदि दोनों मिलते हैं तबही शुद्ध विशुद्ध जीवात्मा का प्रकाश उर्वशी द्वारा होता है। ये जो वैदिक विविध क्रियाएँ हैं वही उर्वशी अप्सरा है क्योंकि इसीको बहुतसे वैदिक ऋषि चाहते हैं 'उरवो बहव उशन्ति इच्छन्ति यां सा उर्वशी' बहुत प्रकार की क्रियाएँ होती हैं अथवा उनका अप=जल से सम्बन्ध है अतः उसको अप्सरा कहते हैं। उसी परम पवित्रा परम सुन्दरी क्रिया को लक्ष्य करके अर्थात् वैदिकी क्रिया को जगत् में प्रसिद्ध करने के लिये मित्र व वरुण शुद्ध जीवात्मा को जन्म देते हैं। उस जीवात्मा का सब ही आदर करते हैं। हृदय रूप पुष्कर के ऊपर बैठा ध्यान करते हैं। ऐसा शुद्ध जीव भी मोहवश नाना दुःख भोगता है। यह विचित्र लीला इस आख्यायिका में दिखलाई जाती है यथा—यह अवि-

वेकी दुष्ट मन ही विश्वामित्र है। ज्ञान, विज्ञान, सत्य, दान तप आदि सकल शुभ कर्म्मों का यही दुष्ट मन महा शत्रु बनजाता है। अतः यह दुष्ट मन सबका शत्रु होनेके कारण विश्वामित्र है, इन्द्रियगणही इसकी सेनाएँ हैं। उन अविवश इन्द्रियरूप सेनाओं को लेकर यह विश्वामित्र सहस्रों की शिकार कर रहा है। यहां ऋषि विश्वामित्र से तात्पर्य्य नहीं। ऋष्यर्थ में विश्व+मित्र शब्द ही विश्वामित्र बनजाता है। जो सत्य धर्म्म को नष्ट करे वह अवश्य विश्वामित्र कहावेगा। शुद्ध पवित्र विवेकशालिनी बुद्धि ही नन्दिनी है, यही उपासकों को विविध अभिष्ट देती है अतः यही कामधेनु है। बुद्धिमान् पुरुष इसी बुद्धि से संसार को वश में कर लेते हैं। यही अद्भुत २ पदार्थ उत्पन्न करती है। अब इतनी टिप्पणी के साथ आशय पर ध्यान दीजिये—

आश्रम में विश्वामित्र का प्रवेश—बड़े २ तपस्वी योगी ऋषियों का भी मन चञ्चल होजाता है। सांसारिक भोगविलास बलात्कार उपासक को अपनी ओर खैंच लेते हैं अतः गीता में कहा जाता है कि "अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः"। महाभारत आदिकों में इसके अनेक उदाहरण कहे गए हैं सोभरि जल में तप करते थे तो भी तपोभ्रष्ट हुए। भोगविलास की ओर मन का होना ही मानों विश्वामित्र का वसिष्ठ के हृदयरूप आश्रम

में प्रवेश है। प्रथम उपासक इसका बड़ा आदर करता है। यही दुष्ट मनोरूप विश्वामित्र को नाना भोगों से वसिष्ठ कर्तृक तृप्त करना है॥

<u>महासंग्राम</u>—इस प्रकार जब मन देखता है कि यह मेरे वश में आगया है किन्तु इसके पास एक बुद्धिरूपा नन्दिनी है जो कभी २ रुकावट डालती है, प्रथम इसका ही हरण करना चाहिये। इसमें सन्देह नहीं कि जब आदमी भोगविलास में फंसता है तब इसकी बुद्धि प्रथम नष्ट होती है। अतः इस बुद्धिरूपा नन्दिनी को विश्वामित्र हरण करना चाहता है परन्तु बहुत दिनों से परिपक्क वेदों तथा विवेकों से सिक्ता बुद्धि शीघ्र नष्ट नहीं होती। दुष्ट मन और विवेकशालिनी बुद्धि में कर्त्तव्याकर्त्तव्य के वास्ते महाभयङ्कर संग्राम होता है। बुद्धि जीत जाती है। मन भाग जाता है, परन्तु दुष्ट मन कभी निश्चिन्त नहीं होता॥

<u>वसिष्ठ पुत्र शक्ति का नाश</u>—यहां देखते हैं कि वसिष्ठ के पास ऐसी नन्दिनी रहने पर भी वह इनकी रक्षा करने में समर्था नहीं होती जो नन्दिनी सहस्रों भोज्य पदार्थ उत्पन्न कर क्षण मात्र में विश्वामित्र की सेना को तृप्त कर देती है, जो अनेक प्रकार की सेनाओं को उत्पन्न कर विश्वामित्र की सेनाओं को छिन्न भिन्न कर भगा देती है वह अब कहां गई जो वसिष्ठ के पुत्र को भी बचा न सकी। इसमें गूढ़ रहस्य यह है कि जब उपासक मनको

चञ्चल बना देता तब वह बुद्धि कुछ काम नहीं कर सकती प्रथम उपासक के मानसिक आत्मिक और शारीरिक बलों को वह मन नष्ट कर देता है। अतः लिखा है कि वसिष्ठ के पुत्र शक्ति को विश्वामित्र ने कल्माषपाद से मरवा दिया। मानसिक आदि बलही प्रिय पुत्र हैं। इसी से परम रक्षा होती है। यही वसिष्ठ (जीवात्मा) का परम-प्रिय पुत्र शक्ति है जिस के नष्ट होने से जीवात्मा विविध दुःखों को भोगता है॥

<u>वसिष्ठ की व्यग्रता</u>—जब मन दुष्ट हुआ। बुद्धि नष्ट हुई। शक्ति जाती रही तब मनुष्य क्योंकर पागल न हो। अब वसिष्ठ पागल होकर कभी कामरूप महाग्नि में भस्म होता है कभी पापरूप महासमुद्र में गिरता है कभी शोकरूप चट्टानों पर गिरकर चूर्ण २ होता है अथवा विविध मानसिक दुःखों से पीड़ित होता है यही वसिष्ठ का अग्नि आदि में भस्म होना आदि है, परन्तु वह कहीं मरता नहीं इस प्रकार विविध ठोकरों को खाता हुआ जब कभी इसे होश आता है तब वह पुनः चेत जाता है और सब विघ्नों को नाशकर वसिष्ठ का वसिष्ठ बन जाता है, यही वसिष्ठ का पुनः आश्रम में प्रवेश है॥

<u>पराशर की उत्पत्ति</u>—पुनः जब वसिष्ठ आश्रम में लौट कर आता है तो देखता है कि कोई बालक वेद ध्वनि कर रहा है उस से प्रसन्न हो पुनः स्वस्थ होजाता है। ठीक है

आध्यात्मिक शक्ति का अवश्य कुछ फल मिलता ही है। उस शक्ति की भी शक्ति अदृश्य है। अतः शक्ति की स्त्री का नाम 'अदृश्यन्ती' है, इस से पराशर उत्पन्न होता है 'परान शत्रून् आशृणाति अथवा पराशणाति' अर्थात् निखिल विघ्न रूप शत्रुओं को नाश करने हारा विवेक ही यहां पराशर है क्योंकि यह वेद पढ़ रहा है, भाव इसका यह है कि जब पुनः विवेक उत्पन्न होता है तब वेद शास्त्रों में चित्त लगने लगता है तब सब विघ्न स्वयं नष्ट हो जाते हैं॥

<u>कल्माषपाद</u>—जिसके बल पर चलते हैं वह पैर है। कल्माष=विविधवर्ण वा काला। ज्ञान विज्ञान युक्त धर्म्म ही मनुष्य का पैर है जब यह बिगड़ जाता है तब इसकी शक्ति कैसे रह सकती है। अतः लिखा है कि यह प्रथम 'मित्रसह' नामसे प्रसिद्ध था, और वसिष्ठ का यजमान भी था पश्चात् यही राक्षसरूप होके शक्ति को खागया। निः-सन्देह धर्म्म ही आत्मरूप वसिष्ठ का सहायक है, इसी यज-मान से आत्मरूप पुरोहित विविध धन पाता रहता है। परन्तु जब आत्मरूप वासिष्ठ इसका निरादर करता है तब निः-सन्देह वह बिगड़ जाता है और आत्मा को भी बिगाड़ना आरम्भ करता है <u>"धर्म्म एव हतोहन्ति"</u>॥

<u>विश्वामित्र का वारम्वार आक्रमण</u>—भिन्न २ स्थलों में भिन्न २ कथा है, ग्रन्थ के विस्तार भय से मैं सब को पृथक् २ नहीं बतला सकता। महाभारत आदि पर्व में

वारम्वार आक्रमण की कथा नहीं है, रामायण में इसका विस्तार से वर्णन है। निःसन्देह दुष्ट मन वारम्वार तपस्वी आत्मा को भी दूषित करना चाहता है परन्तु जो उपासक परीक्षा में स्थिर रहते हैं वे सदा विजयी होते आए हैं। यही इसका आशय है ॥

विश्वामित्र का ब्राह्मण होना—जब यह ब्राह्मण होजाता है तब पुनः वसिष्ठ के साथ वैर नहीं रखता। ठीक है। जबतक यह मन राजस और तामस भाव में लगा रहता है तबतक आत्मा को दुःख ही देता रहता है जब यह भी आत्मा के समान सात्त्विक बन जाता है तब दोनों मिलकर जगत् में महान् कल्याण को सिद्ध करते हैं। यही विश्वामित्र का ब्राह्मण होना है। उपनिषदों में आया है तप वा कर्म्म करने से ये इन्द्रियगण मनःसहित देव बनते हैं। अतः यहां विश्वामित्र का तपश्चरण के पश्चात् ब्राह्मण होना लिखा है ॥

कथा की तुलना—लोग कहेंगे कि यह केवल एक छोटी सी बात है परस्पर मनःसहित इन्द्रियों और आत्मा के साथ युद्ध का इतना बड़ा वर्णन करना असंगत प्रतीत होता है इसके उत्तर में इतना ही कहना पर्य्याप्त होगा कि क्या ऐसे ही घोरयुद्ध का वर्णन बुद्धदेव और कामदेव के साथ नहीं है ? क्या सचमुच देहधारी कामदेव के साथ बुद्ध का युद्ध हुआ था। क्या यथार्थ में महादेव के ऊपर

देहधारी काम ने चढ़ाई की थी, जिस को उन्होंने भस्म कर दिया। क्या सचमुच ईसा को कहीं शैतान लेगए थे और कई दिनों तक उन को दुःख देते रहे ? इत्यादि आलङ्कारिक कथा प्राचीन काल में बहुत बनाई जाती थी। इसी वसिष्ठ और विश्वामित्र की कथा का प्रतिरूप बुद्ध के साथ कामदेव का युद्ध है ॥

असंगति किस पक्ष में—इतिहास मानने वालों से मैं पूछता हूं कि क्या किसी समय में ऐसी गौ हो सकती है जो सारी सृष्टि रचने की भी शक्ति रखती हो ? क्या विश्वामित्र कोई पागल राजा था कि एक गौ के लिये अपना सम्पूर्ण राज्य देता था, या गौ की ऐसी शक्ति देखकर भी उस से उस को भय नहीं उत्पन्न हुआ कि जिसके ऐसे सामर्थ्य हैं उसे मैं बलात्कार कैसे लेजाऊंगा। पुनः ऐसी गौ के रहते हुए भी वसिष्ठ के पुत्रों की रक्षा क्यों न हुई ? ब्राह्मण होने ही के लिये विश्वामित्र क्यों मरता था ? क्योंकि राजाओं की भी थोड़ी प्रतिष्ठा नहीं थी। क्या यह सम्भव है कि एक क्षत्रिय राजा राक्षस होके अपने पुरोहित को ही खा जाय ? इत्यादि विषयों पर ध्यान देने से इस कथा का आलङ्कारिकत्व सिद्ध होता है ॥

२ द्वितीय आशय—इस का अन्य आशय इस प्रकार होता है। महाभारत के विषय में यह कहा जाता है कि

"भारत व्यपदेशेन ह्याम्नायार्थश्च दर्शितः" वेदों के ही अर्थों को नाना रूपों में वह वर्णन करता है। मैं भी इस मत से बहुधा सहमत हूं। महाभारत शब्दों तथा भावों को कुछ परिवर्तन कर वेदार्थ को दरशाता है। वेद में शुतुद्री। भारत में शतद्रु। वेद में च्यवान। भारत में च्यवन। वेद में दध्यङ्। भारत में दधीचि इस प्रकार के अनेक उदाहरण पावेंगे। जैसे महाभारत शब्दों को हेर फेर कर उस २ का निज अभीष्ट अर्थ बना लेता है वैसे ही वेदार्थ में भी कुछ बदल कथा रचता है। वेदों में दन्त्य सकार से, भारत में तालव्य शकार से वसिष्ठ लिखा जाता है। व्युत्पत्ति भी इस प्रकार ही प्रायः करते हैं। महाभारत वेदार्थ से बहुत दूर नहीं जाता है, यह भी प्राचीन ग्रन्थों का ही अधिकांश में संग्रहकर्त्ता है। महाभारत दिखलाना चाहता है कि सत्य धर्म्म के नियमों को भी लोग निरुपद्रव नहीं रहने देते। अब इन विषयों को इस आख्यान में विचार दृष्टि से देखिये॥

विश्वामित्र शब्द—विश्वामित्र ऐसा नाम क्यों रक्खा गया। पाणिनि व्याकरण के अनुसार "मित्रे चर्षौ" ऋषि अर्थ में विश्वामित्र बनता है किन्तु यह अभी तक राजा है राजर्षि भी नहीं फिर विश्वामित्र इस नाम से यह कैसे पुकारा जा सकता है और वेद में विश्वामित्र और वसिष्ठ के वैर की कोई चर्चा नहीं अतः लोक में यह शब्द कुछ

अन्य अर्थ का सूचक है इस में सन्देह नहीं। मैं कह चुका हूं कि सत्य धर्म्म का नाम वसिष्ठ है। उस को जो नष्ट करना चाहेगा वह अवश्य शत्रु बनेगा अतः विश्व के अमित्र अर्थ में यह विश्वामित्र शब्द है। अब विश्वामित्र राजा क्यों कहाता इसका भी कारण यह है कि सात्त्विक पुरुष सदा धर्म्म में स्थिर ही रहते हैं। तामस जन कुछ कर ही नहीं सकते। केवल राजस पुरुष ही हलचल मचाने हारे होते हैं, वे ही अधिकांश धर्म्म नियमों को उल्लंघन कर प्रजाओं में उपद्रव करते रहते हैं। अतः यह विश्वामित्र राजा कहता है। धर्म्म केवल तप और बुद्धि पर निर्भर है। वही बुद्धि नन्दिनी है। यही काम धेनु है। वह उपद्रवात्मक विश्वामित्र राजा प्रथम जगत् से बुद्धि को नष्ट करना चाहता है। परन्तु वह नष्ट नहीं हो सकती। बुद्धि का ही विजय होता है। पुनः परास्त हो धर्म्म के सहायकों को अपना सहायक बना प्रथम नियम की शक्ति को नष्ट कर देता है। अतः इस आख्यान में आता है कि जो मित्रसह प्रथम वसिष्ठ का यजमान था वही विश्वामित्र का सहायक बन शक्ति को खा जाता है। जो धर्म्मरूप मित्र का रक्षक था वह अब भक्षक बन जाता है। जब धर्म्म की शक्ति नष्ट हो जाती है वह धर्म्म व्याकुल होजाता है। धर्म्म देखता है कि जो मेरे पालक थे, जिन की सहायता से मैं उत्पन्न हुआ हूं वह राजवर्ग ही मुझे खाना चाहता है तो इस से अच्छा है मैं मर जाऊं।

यह सोच धर्म्मरूप वसिष्ठ अग्नि, जल, पर्वत, शस्त्रास्त्र, विष आदि सब के निकट मरने को जाता है परन्तु धर्म्म की रक्षा जड़ पदार्थ भी करना चाहते हैं क्योंकि धर्म्म के नियम पर ही वे चल रहे हैं। अतः अपनी शरण में आए हुए धर्म्म को अग्नि आदि कोई भी नष्ट नहीं होने देते। अतः सब स्थान से वह धर्म्म लौट आता है अर्थात् कुछ समय तक राजस पुरुषों के उपद्रव से धर्म्म अस्तव्यस्त सा होजाता। यही आश्रम छोड़ वसिष्ठ का इधर उधर चला जाना है। पश्चात् पुनः प्रजाओं में कोलाहल मचता है। उपद्रव शान्त किया जाता है। स्वयं उपद्रवी धर्म बल देख शान्त होकर पश्चात्ताप करके शुद्ध आचरण बनाने की प्रतिज्ञा करते हैं। इतना ही नहीं किन्तु वे भी सात्त्विक बन जाते हैं। यह केवल धर्म का ही प्रभाव है जो राजस पुरुष भी सात्त्विक बन हिंसकप्रवृत्ति से निवृत्त होजाते हैं। अतः यह उपद्रवात्मक विश्वामित्र ब्राह्मण बनता है। दूसरी ओर प्रजाएँ धर्म को पुनः सींचने लगती हैं। धर्म के कर्म आदि पुत्रों की अदृश्यन्ती शक्ति से पराशर अर्थात् समस्त उपद्रवों का विनाश करने हारा पुत्र जन्म लेता है। उस से पुनः वैदिक मार्ग स्थिर होजाता है। अतः पराशर के जन्म से वसिष्ठ की शान्ति होती है॥

<u>कथा की नित्यता</u>—धर्म्म नियम का सदा नाम वसिष्ठ होगा क्योंकि सब के हृदय में अच्छे प्रकार यह वास करता है, इसको सदा मित्र वरुण अर्थात् ज्ञानी और राज

वर्ग मिलकर जन्म दिया करेंगे। इस के जो विरुद्ध होंगे वे विश्वामित्र और कल्माषपाद आदि नामों से पुकारे जायँगे। यह सदा क्षत्र वर्गों का ही पुरोहित अर्थात् शासक रहेगा। यह ब्राह्मण नाम से पुकारा जायगा क्योंकि अधिकांश यह ज्ञानी वर्ग से उत्पन्न होता है। धर्म की शक्ति देख सदा राजस वर्ग ब्राह्मण होने की चेष्टा करेंगे। इत्यादि नित्य भावका सूचक यह आख्यायिका है॥

३ तृतीय आशय—प्रथम दो एक बातें ये हैं। शतपथ के कई स्थलों में लिखा है कि ब्रह्म और क्षत्र वर्ग को मिलकर शासन करना उचित है "ब्रह्म च क्षत्रं चाग्निरेव ब्रह्म इन्द्रः क्षत्रं तौ सृष्टौ नानैवास्ताम्। तावब्रूतां न वा इत्थं सन्तौ शक्ष्यावः प्रजाः प्रजनयितुम्। एकं रूप मुभावसावेति तावेकं रूप मुभावभवताम्" शतपथ १०।४॥ आशय यह है कि ब्रह्म और क्षत्र दोनों प्रथम पृथक् २ थे। दोनों ने कहा कि इस प्रकार पृथक् २ होकर प्रजाओं को बना नहीं सक्ते इसलिये आइए दोनो एक रूप होजांय। वे दोनों एक रूप होगए। शतपथ एकादश काण्ड अध्याय छः में यह भी वर्णन आता है कि जनक महाराज ने कतिपय ब्राह्मणों से अग्निहोत्र के प्रश्न पूछे। उनके समाधान से जनक सन्तुष्ट न हुए इस कारण वे ब्राह्मण बिगड़ कर लड़ने को तयार होगए। तब "स होवाच याज्ञवल्क्यो ब्राह्मणा वै वयं स्मो राजन्यबन्धुरसौ यद्यमुं वयं जयेम

क मजैष्मेति ब्रूयाम । अथ यद्यस्मान् जयेद् ब्राह्मणान् राजन्यबन्धु रजैषीरिति नो ब्रूयुः । इत्यादि । याज्ञवल्क्य ने कहा कि हम सब ब्राह्मण हैं । वह राजन्य बन्धु है । यदि हमने उसे जीत ही लिया तो क्या हुआ, किसको हमने जीता, क्या हम कहेंगे । यदि उसने हमको जीत लिया तो लोक कहेंगे कि देखो राजन्यबन्धु ने ब्राह्मणों को जीत लिया इत्यादि प्रमाणों से सिद्ध है कि ब्रह्म और क्षत्र वर्ग में परस्पर विरोध होना आरम्भ होगया था । तीनों वेदों में इन सबकी कोई चर्चा नहीं। हां, ब्रह्म क्षत्र को मिलकर व्यवहार करना चाहिये ऐसा वर्णन यजुर्वेद में आया करता है जिसके उदाहरण प्रारम्भ में ही लिखे गए हैं । यजुर्वेद में यह भी एक बात आती है कि ऐ प्रजाओ ! यह राजा जो अभी तुम लोगों की आज्ञा से अभिषिक्त होरहा है वह तुम लोगों का राजा होता है। हम ब्राह्मणों का राजा केवल सोम अर्थात् परमात्मा है । यथा—विश एष वोऽमी राजा सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानां राजा । यजु० ६ । ४० ॥ इस प्रकार समीक्षा करके देखते हैं तो प्रतीत होता है कि ब्रह्म अर्थात् ज्ञानी वर्ग का यथार्थ में कोई राजा नहीं है और होना भी नहीं चाहिये क्योंकि उनके नियम पर जगत् चल रहा है वे

किनके नियम पर चलें। जो सर्वथा ज्ञानपूर्वक धर्म्म नियम पर चलें चलावें वेही ब्रह्म या ब्राह्मण हैं। क्षत्र वा क्षत्रिय वे हैं जो अधिकृतया बल से काम लेवें। प्रतीत होता है कि अति प्राचीन काल में वे क्षत्रवर्ग ब्रह्मवर्ग को भी अपने वश में करके सुबद्ध करना चाहते थे। जब २ ऐसी अशुभ इच्छा क्षत्रवर्ग में उत्पन्न होती थी तब २ इन दोनों में महान् कोलाहल मचजाता था। पुनः शान्ति स्थापना होकर धर्म्म के प्रबल नियम बनाए जाते थे। परन्तु यह कब सम्भव है कि उद्दण्ड क्षत्रवर्ग उन नियमों को अच्छे प्रकार निबाह सकें अतएव ब्राह्मण ग्रन्थों के समय जो इन दोनों वर्गों में वैमनस्य का बीज बोया जारहा था वह समय पा कर बहुत बढ़ गया॥

पशुराम की कथा भी इसी दशा का प्रमाण है। इसी विरोध के चित्रको महाभारत अपने सामने दिखलाता है। ब्राह्मण के निकट कौनसी शक्ति और क्षत्रिय किस शक्ति पर नाचते हैं। ब्राह्मण कैसे उन्नत होते और क्षत्रिय कैसे अपनी दुर्बलता दिखलाते यह सब वसिष्ठ और विश्वामित्र के जीवन चरित्र से सिद्ध किया गया है। यहां एक बात सदा ध्यान में रखना चाहिये कि ब्राह्मणजाति और क्षत्रियजाति का युद्ध नहीं, इनकी स्तुति निन्दा नहीं, जिस

समय ऐसी २ कथा बनाई गई उस समय जाति विभाग नहीं था यदि जाति विभाग होता तो ऐसी कथा कभी देश में प्रचलित नहीं होती। कोई भी क्षत्रिय उसको नहीं सुनता अतः यहां ब्रह्म वा ब्राह्मण पद से विवेकी ज्ञानी, तपस्वी, ऋषि अर्थ और क्षत्र वा क्षत्रिय पद से शासक बलात्कार कारी परमबलिष्ठ आदि ग्रहण करना चाहिये। अन्त में यजुर्वेद के मन्त्र को पुनः स्मरण दिला इस प्रकरण को यहां ही समाप्त करता हूं ॥

यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च सम्यञ्चौ चरतः सह।
तं लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्र देवाः सहाग्निना ॥

यजुः २० । २५ ॥

वैदिक रहस्य, प्रथम भाग

ओ३म्

चतुर्दश-भुवन ॥

सम्पादक—

शिवशङ्कर शर्म्मा

राजकिशोर वर्म्मा एण्ड ब्रदर्स ने
मुद्रित किया
राजनीति प्रेस पटना सीटी।

द्वितीय वार | संवत १९६९ वि०
१००० | सन १९१२ ई०

द्वितीय संस्करण
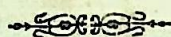
पृथिवी पर की प्रायः सर्वप्रसिद्ध प्राचीन भाषाओं का वैदिक भाषा से घनिष्ठ सम्बन्ध है। संस्कृत साहित्यकी तो यह साक्षात् जन्मदात्री ही है : अतः मुझे अच्छी तरह विश्वास है कि जबतक वैदिकसाहित्य से लोग परिचित न होंगे तबतक सहस्रों भ्रम अथवा अविद्याएं पृथिवी पर राज्य करती रहेंगी, ऐतरेय शतपथ ब्राह्मणादि ग्रन्थों से लेकर पुराण पर्य्यन्त का सत्य आशय प्रगट न होगा, मैत्रावरुण, वसिष्ठ, लोपामुद्राऽगस्त्य, च्यवन, रोमशा, अपाला प्रभृतियोंके आख्यान अपने वास्तविकरूप प्रकट न कर सकेंगे, नरमेध, अश्वमेध, गोमेध आदि यज्ञोंका उच्च अर्थ न जान सकेंगे, निःसन्देह तबतक गुहा में ही धर्मतत्त्व छिपे रहेंगे। क्या वैदिक क्या लौकिक समस्त संस्कृतसाहित्य आश्चर्य अद्भुतरूपकों से रूपित है। कहना पड़ता है कि ऐसी विलक्षण भाषाओंसे सम्पूर्ण संस्कृतसाहित्य ग्रथित है कि सर्वसाधारण पुरुष इसके योग्य नहीं तथापि नाना व्याख्यानों के द्वारा विद्वद्गण उसको सुबोध कर सकते हैं। जिज्ञासु पुरुषो ! आप सद्भाव और गवेषणा की दृष्टि से देखें जो केवल इस मानव शरीरके समाहार का निरूपण था वह आज कितने असंख्यरूपों को धारण किए हुए हैं और इसके वास्तविक रूप आपको प्रतीत नहीं होते। ध्यानसे इस " चतुःशभुवन " को पढ़ विचारें, आप देखेंगे कि क्या था और अब क्या होगया।

यलादेशानिवासी—

ता० १० ८-१९१२ ई०। [illegible] शिवशङ्कर काव्यतीर्थ

ध्रुवं ज्योतिर्निहितं दृशये कं,
मनो जविष्ठं पतयत्स्वन्तः ।
विश्वे देवाः समनसः सकेता,
एकं क्रतुमभिवि यन्ति साधु ॥ ऋग् ६।९।५॥

(कम् + दृशये) सुखपूर्वक परमात्मा की विभूतियों के देखने के लिये (पतयत्सु + अन्तः) इन पतनशीलों अर्थात् जंगम प्राणियों के मध्य (जविष्ठम् + ध्रुवम् + मनः + ज्योतिः + निहितम्) अतिशय वेगवान् तथापि निश्चल मनः-स्वरूप ज्योति स्थापित है (समनसः + सकेताः) उस मन और विज्ञान से युक्त (विश्वे + देवाः + एकम् + क्रतुम + अभि) ये सब इन्द्रिय उस एक महान् कर्त्ता की ओर (साधु + वि + यन्ति) सुन्दरता और विशेषता के साथ जायं ।

शिक्षा—इस मानव शरीर में एक परम सुन्दर अविनश्वर ज्योति विद्यमान है जिसको मन कहते हैं । निस्सन्देह, मानसिक शक्ति से मनुष्यजाति अनभिज्ञ होरही है मन और वाणी अर्थात् विस्पष्टभाषा ये दो पदार्थ अद्भुत रूप से मनुष्य में स्थापित किये गए हैं इन दोनों को जो अनुचित व्यवहार में लगाकर समय बिताते हैं वे ही परमपशु हैं । अतः ऐ मनुष्यो ! जिससे तुम्हारे ज्ञानविज्ञान-सहित यह मन और मनःसहित ये इन्द्रियगण उस महान् कर्त्ता की ओर जायं वैसा उपाय करो ।

वि मे कर्णा पतयतो वि चक्षु,
र्वीदं ज्योतिर्हृदय आहितं यत् ।
वि मे मनश्चरति दूरआधीः
किं स्विद्वक्ष्यामि किमु नू मनिष्ये । ऋग् ६।९।६॥

(मे + कर्णा + वि + पतयतः) मेरे दोनों कान इधर उधर दूर २ गिर रहे हैं (चक्षुः + वि) मेरे नयन भी इधर उधर दूर २ दौड़ रहे हैं (हृदये + यद् + इदम् + ज्योतिः) हृदय में स्थापित जो यह ज्ञानरूप ज्योति है वह भी (वि + पतयति) दूर भाग रहा है (दूरेआधीः + मे + मनः + वि + चरति) अति दूरस्थ विषय में ध्यान लगाकर मेरा यह मन भी दूर २ विचरण कर रहा है ऐसी अवस्था में प्रभु के समीप (किम् + स्विद् + वक्ष्यामि) क्या मैं कहूंगा और (किम् + उ + नु मनिष्ये) क्या मनन करूंगा ।

शिक्षा—प्रत्येक मनुष्य का नित्य का यह अनुभव है कि कर्ण, चक्षु, मन आदि इन्द्रिय किसी कार्य में स्थिर नहीं रहते । किञ्चिन्मात्र ही मौका मिलने पर झट से इधर उधर भागने लगते हैं । ऐसी अनवस्थित दशा में मनुष्य सूक्ष्म कार्य कदापि नहीं करसकता अतः यहां प्रार्थनाहै कि हे परमात्म-देव ! मेरे कर्ण, नयन, हृदयस्थ ज्ञान और यह मन सबहीं चारों तरफ भाग रहेहैं । मैं कैसे आपके गुण गाऊं कैसे मनन करूं । हे भगवान् ! आशीर्वाद करो जिससे मेरे सब इन्द्रिय समाहित हों और उनके द्वारा आपकी परम विभूतियां देखूं । इस

पृथिवीपर अभीतक जो ज्ञान, विज्ञान, कलाएं, कौशल, शास्त्र आदि प्रकाशित होचुके हैं, होरहे हैं और होनेहारेहैं वे सबही इसी आत्मा से निकलेहैं, निकलरहे हैं, निकलेंगे। इस तत्त्व को जो जानताहै वही पण्डितहै। सो यह आत्मा मन और इन्द्रियोंका अधीनहै जिसके इंद्रिय चंचल चपल हैं उसका आत्मा कुछ नहीं कर सकता इन्हीं इन्द्रियों को विवश करने के लिये वेदों से लेकर अद्यावधि सहस्रों लक्षों गाथाएं लिखीगई हैं और लिखीजारही हैं। मैं भी आज इनकी ही गाथा वेदों से दिखलाता हूं इसके साथ २ अनेक वस्तुओं का भी निर्णय होगा।

सप्तऋषि आदि—दो नयन, दो श्रोत्र, दो घ्राण (नाकें), एक मुख ये मिलके सात ऊपर के अङ्ग होते हैं। इन्हीं सातों को सप्त ऋषि, सप्त होता, सप्त ऋत्विक्, सप्त देव, सप्त असुर, सप्त प्राण, सप्त लोक, सप्त द्वीप, सप्त सागर, सप्त सिंधु, सप्त नदियां, सप्ताचल इत्यादि नाना नामों से पुकारते हैं। दो हस्त, दो चरण, एक मलेन्द्रिय, एक मूत्रेन्द्रिय और एक मध्य शरीर अर्थात् गर्दनसे नीचे कमर से ऊपर का भाग, ये मिल के सात नीचे के अवयव होतेहैं, इन्हीं सातोंको पुराणोंमें सप्त पाताल, सप्त अधोलोक, सप्त अधोभुवन, सप्त नरक इत्यादि विविध नाम देतेहैं, नयन आदि सप्त और हस्त आदि सप्त, मिलके (१४) चतुर्दश होतेहैं, ये ही चतुर्दश लोक चतुर्दश भुवन प्रभृति नाम से कहे जाते हैं। पुराणों में अत्यन्त विस्तार से इनका

वर्णनहै। शिरस्थ नयन आदि सातोंको भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपोलोक और सत्यलोक कहतेहैं। और हस्त आदि सातोंको अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल, पाताल कहते हैं येही चतुर्दश भुवन हैं। यह सब वर्णन इस देहमात्र का है। इसी शरीर में ये चौदह लोकहैं इनको सब प्रकार से जाने जनवावें। इनके पूर्ण ज्ञान से मनुष्य का मंगल-कल्याण होता है। पश्चात् धीरे २ इसके यथार्थ भावको लोग भूल गये तब इस शरीरको छोड़ बाह्य जगत् में १४ चतुर्दश भुवन खोजने लगे। स्वस्वमनोनुकूल और स्वस्वबुध्यनुसार इसकी व्याख्या होनेलगी। आश्चर्य की बात है जो केवल शरीरमात्र का विवरण था वह अब इस अनन्त अनादि जगत् का विवरण बनगया। विद्वान् लोगभी इसको ऐसेही मानने मनवाने लगे। क्यों ऐसा महापरिवर्तन वा उलट पुलट हो गया? इस प्रश्न का एकमात्र यही समाधान है कि वेदोंको न पढ़ना, पढ़ाना ही इस महान् अज्ञान का कारण है—अब मैं वेदों के मन्त्रों को लेकर अतिसंक्षिप्त रूप से इस विषय का दिग्दर्शनमात्र करवाताहूं। आप देखते जायंगे कि वैदिक परिमित पदार्थों से यह लौकिक जगत् कितना विस्तीर्ण बन गया है।

सप्त ऋषि ॥

अर्वाग्बिलश्चमस ऊर्ध्वबुध्नस्तास्मिन् यशो निहितं

विश्वरूपम् । तस्यासत ऋषयः सप्त तीरे वागष्टमी ब्रह्मणा संविदाना ॥ बृहदारण्यकोपनिषद् २।२।३।

प्रथम उपनिषद् का ही प्रमाण इस हेतु लिखा है कि इस की व्याख्या स्वयं एक महर्षि याज्ञवल्क्य ने कियाहै और किञ्चित् पाठभेदके साथ वेदमें भी यह मंत्र आया है आगे देखिये । अर्थ—(अर्वाग्बिलः) जिसका बिल अर्थात् छिद्र नीचे हो (ऊर्ध्वबुध्नः) और जिसकी जड़ ऊपर हो ऐसा (चमसः) एक चमस नाम का पात्र है (तस्मिन् । विश्वरूपम्+यशः+निहितम्) उस चमस में सब प्रकारके रूपवाला यश स्थापित है। (तस्य+तीरे+सप्त+ऋषयः+आसते) इसके तीर पर सात ऋषि बैठे हुए हैं (अष्टमी+वाग्+ब्रह्मणा+संविदाना) और आठवीं वाणी ब्रह्म के साथ संवाद कर रही है। ये इसके पदार्थ हुए । अब इसका आशय स्वयं ऋषि इस प्रकार वर्णन करते हैं—

"यह शिर ही चमस है इसकी जड़ ऊपर और मुखरूप छिद्र नीचे है। इसी में सब यश स्थित हैं । इसके तीर पर दो नयन, दो श्रोत्र, दो घ्राण और एक मुख अथवा रसना ये ही सात ऋषि बैठे हुए हैं—और आठवीं वाणी ब्रह्मका विचार कर रही है। ये दोनों कर्ण=गौतम और भरद्वाज हैं । ये दोनों आंखें=विश्वामित्र और जमदग्नि हैं । ये दोनों घ्राण (नाकें)=वसिष्ठ और कश्यप हैं (रसनाका कोई विशेष नाम नहीं दिया गयाहै) वाणी=अत्रि है" यहां देखते हैं कि सप्तऋषि पद से स्वयं महर्षि

कर्ण आदि सात इन्द्रियों का ही ग्रहण करतेहैं और इन के नाम भी गौतम भरद्वाज आदि पृथक् २ रखते हैं।

तिर्यग्बिलश्चमस ऊर्ध्वबुध्नो यस्मिन् यशो निहितं विश्वरूपम् । अत्रासत ऋषयः सप्त साकं ये अस्य गोपा महतो बभूवुः। अथर्ववेद । १० । ८ । ९॥

यह ऋचा निरुक्त दैवतकाण्ड ६ । ३८ में भी आई है। अर्थ—जिसका बिल नीचे मूल ऊपर है ऐसा एक चमस नाम का पात्र है जिसमें सब प्रकार का यश स्थापित है। यहां इसके साथ सात ऋषि हैं जो इस महान् (शरीर) के रक्षक हैं। अर्थ पूर्ववत् ही है। यहां अष्टमी वाणी की चर्चा नहीं है पुनः

सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे सप्त रक्षन्ति सदम-प्रमादम्। सप्तापः स्वपतो लोकमीयुस्तत्र जागृतो अस्वप्नजौ सत्रसदौ च देवौ॥ निरुक्तदैवत काण्ड अ० ६ । ३७॥

(शरीरे + सप्त + ऋषयः + प्रतिहिताः) शरीर में सात ऋषि स्थापित हैं (सप्त + अप्रमादम् + सदं + रक्षन्ति) सातों प्रमादरहित हो शरीर की रक्षा करते हैं (आपः + स्वपतः + लोकम् + ईयुः) बहुत फैलने हारे सातों सोते हुए पुरुष के आत्मा के निकट जाते हैं (तत्र + अस्वप्नजौ + सत्रसदौ + च + देवौ + जागृतः) उस समय न सोने हारे सदा शरीरस्थ दो देव जागे हुए रहते हैं।

ये ही दो नयन, दो कर्ण, दो नासिकाएं और एक जिह्वा सात ऋषि हैं जो शरीर के उपरितन भाग शिर में स्थित हैं ये ही सातों शरीर की रक्षा करते हैं ये ही सुषुप्त्यवस्था में जीवात्मा से मिलकर कुछ देर शान्तिलाभ करते हैं। इस समय मुख्य प्राण और आत्मा ये दोनों देव जागते रहते हैं ! यहां "शरीर में सात ऋषि स्थित हैं" इतने कहने मात्र से सिद्ध होता है कि इन इन्द्रियों का ही विवरण हैं। यास्काचार्यादिकों ने भी इसी अर्थ का ग्रहण किया है।

इतनाही नहीं किन्तु वेदों में विश्वामित्र, वसिष्ठ, अत्रि, अङ्गिरा आदि जितने ऋषिवाचक शब्द आये हैं वे प्राणवाचक हैं अथवा प्राणविशिष्ट जीवात्मवाचक है। प्राण नाम इन्द्रियों का है अतएव ब्राह्मण ग्रन्थों में "प्राणा वै ऋषयः" शत० ६। १। प्राणा वै ऋषयः। इस प्रकार का पाठ बहुत आता है। शतपथब्राह्मण के अष्टमकाण्ड के आरम्भ में लिखा है कि—प्राणो वै भौवायनः। प्राणो वै वासिष्ठ ऋषिः। मनो वै भरद्वाजः। चक्षुर्वै जमदग्निर्ऋषिः। श्रोत्रं वै विश्वामित्र ऋषिः। वाग्वै विश्वकर्मा ऋषिः। इत्यादि अनेक प्रमाणों से सिद्ध है कि वेदों में जो वसिष्ठ आदि पद आये हैं वे प्राणों के नाम हैं।

पुनः बृहदारण्यकोपनिषद् में याज्ञवल्क्य कहते हैं—
१--वाग्वै यज्ञस्य होता। २--चक्षुर्वै यज्ञस्याऽध्वर्युः। ३--प्राणो वै यज्ञस्य उद्गाता। ४--मनो वै यज्ञस्य

ब्रह्मा। पुनः सप्त वै शीर्षन् प्राणाः। ऐतरेय ३।३॥ शिर में सात प्राण हैं। सप्तगतेर्विशेषितत्वाच्च। वेदान्तसूत्र।२।४।५॥ इस वेदान्त सूत्र से भी शिरस्थ सात ही प्राण निर्धारित हुए हैं। इत्यादि अनेकानेक प्रमाणों से सिद्ध है कि जहां २ शरीरस्थ सप्त ऋषियों का वर्णन है वहां २ इनहीं नयनादि सातों का ग्रहण है।

शिक्षा—वेदभगवान् कहते हैं कि यह शिर चमस पात्र के समान है इस में सब यश स्थापित हैं। इसके तट पर सात ऋषि बैठे हुए हैं। अष्टमी ऋषिका वाणी ब्रह्म के साथ संवाद कररही है। ऐ मनुष्यो! ऐसा यह तुम्हारा शरीर परम पवित्र मैंने बनाया है। जहां एक ज्ञानी पुरुष रहता है वहां अन्धकार विलुप्त होजाता तुम्हारे शरीर में तो सत्यासत्य निर्णय के लिये सप्त ऋषि स्थापित हैं तब तुम ज्ञान की ओर नहीं आते हो यह कैसा आश्चर्य है। पुनः ये नयनादिक इन्द्रिय ऋषिहैं इनकी लज्जा रक्खो इन्हें कलङ्कित मत करो। इनसे योग्य कार्य लो। देखो! तुम्हारे शिर में सबही यश स्थापित हैं ज्ञान--विज्ञान की नदियां शिर में बह रहीहैं। महाप्रकाश होरहा है। इस प्रकाशमय शिरसे जिस ने कार्य्य लिया वह सूर्यवत् जगत् में देदीप्यमान हुआ उसकी कीर्त्ति और यश अभीतक पृथिवी पर स्थिरहै और बहुत दिनों तक रहेगा। पुनः वेद कहते हैं कि मानो यह शरीर एक महानगर है इसके नयनादि सात ऋषि रक्षक हैं। प्राण और जीवात्मा सदा जागते

हुए रत्नाकर रहे हैं। किन्तु हे मनुष्यो ! जो रक्षा के लिये हैं उन्हें तुम अपने आचरणोंसे भक्षक बना देते हो वे ही सात ऋषि तुम्हारे लिये पीछे महान् असुर व्याघ्र सिंह बन जाते हैं तुम्हारा सर्वनाश होजाता अतः ऐ प्यारे ! ऐसा यत्नकरो कि ये सात ऋषि सदा ऋषि ही बने रहें। शुद्ध आचरण ज्ञान विज्ञान की ओर जाने, जिज्ञासा में तत्पर होने, आलस्य के त्यागने और प्रयत्न आदि व्यापार से ये सदा ऋषि बने हुए रहेंगे अन्यथा बिगड़ के सिंहवत् राक्षसवत् पिशाचवत् तुम्हें खा जायंगे, इति।

समीक्षा—वेद के उक्त प्रमाणों से निश्चय हुआ कि नयनादि सात इन्द्रियों को सप्त ऋषि कहते हैं। वेदों के इस नियम का सदा स्मरण रखना चाहिये कि नियत संख्या का वर्णन वेदों में आता है। शिर में दो कर्ण, दो नयन, दो घ्राण और एक मुख ये सात नियत हैं परन्तु इस जगत् में न सप्त ऋषि, न सप्त नदियां, न सप्त नक्षत्र, न सप्त पर्वत न सप्त सागर इत्यादि नियत हैं क्योंकि बाह्य जगत् में वे सब न्यून और अधिक हो सकते हैं अतः सप्तपद से नियत शीर्षण्य सप्तेन्द्रिय को त्याग अन्य मनुष्यादियों का ग्रहण करना बुद्धिमत्ता नहीं। अब आप देखेंगे कि इस सप्तर्षि को लेकर कितने प्रकार के सप्त ऋषि बनाये गये—

सप्त ब्रह्मर्षि देवर्षि महर्षि परमर्षयः। काण्डर्षिश्च श्रुतर्षिश्च राजर्षिश्च क्रमावराः। इति रत्नकोषे। मरीचिरत्रिर्भगवानङ्गिराः पुलहः क्रतुः। पुलस्त्यश्च

वसिष्ठश्च सप्तैते ब्रह्मणः सुताः ॥ ऊर्जस्तम्भस्तथा प्राणो दत्तोलिर्ऋषभस्तथा । निश्चरश्चार्ववीराश्च तत्र सप्तर्षयोऽभवन् । अत्रिश्चैव वसिष्ठश्च कश्यपश्च महानृषिः । गौतमश्च भरद्वाजो विश्वामित्रोऽथ कौशिकः ॥ तथैव पुत्रो भगवानृचीकस्य महात्मनः जमदग्निस्तु सप्तैते मुनयोऽत्र तथान्तरे ॥ रामो व्यासो गालवश्च दीप्तिमान्कृप एव च । ऋष्य-शृङ्गस्तथाद्रोणिस्तत्र सप्तर्षयोऽभवन् ॥

इत्यादि प्रमाण मार्कण्डेय हरिवंश विष्णु पुराणं आदि-कों में विद्यमान हैं यदि ऋषि सम्बन्धी सब ही सप्तकगण लिखे जायें तो इन्हीं का एक बड़ा ग्रंथ बन जाय। ये सब धीरे २ अनेक सप्तकगण बन गये । व्यासादि सप्त महर्षि, भेल आदि सप्त परमर्षि ॥कण्व आदि सात देवर्षि । वसिष्ठ आदि सप्त ब्रह्मर्षि, सुश्रुत आदि सप्त श्रुतर्षि । ऋतुपर्ण आदि सप्त राजर्षि, जैमिनि आदि सप्त काण्डर्षि कहलाते हैं। यह रत्न कोष कहता है। पुराणों ने प्रत्येक स्वायंभुव स्वारोचिष इत्या दि मन्वन्तर में सप्त २ ऋषियों की कल्पना की है। प्रत्येक पुराण अपनी २ गाथा भिन्न २ रूप से गाता है इसकी प्रणाली देखने से इनका काल्पनिकत्व स्वयं सिद्ध हो जाता है ! आकाश में भी सात ऋषि मानते हैं। जिज्ञासु पुरुषो ! यह सब कल्पनामात्र है । जब वेदों का अर्थ भूल गये तब नाना कल्पनाएं करके आदि कवि परमात्मा के सब भाव को कलुषित करने लगे ।

सप्त होता ॥

एभ्यो होत्रां प्रथमामायेजे मनुः समिद्धाग्निर्मनसा सप्त होतृभिः। त आदित्या अभयं शर्म्म यच्छत सुगा नः कर्त सुपथा स्वस्तये॥ ऋग् १०।६३।७॥

(मनुः + समिद्धाग्निः) मनु समिद्धाग्नि हो अर्थात् अग्नि को जलाय (एभ्यः + प्रथमाम् + होत्राम्) इनके निमित्त सर्व श्रेष्ठ आहुति को (मनसा + सप्त + होतृभिः + आयेजे) मन और सप्त होताओंके साथ अच्छे प्रकार देतेहैं (आदित्याः + ते + अभयं + शर्म्म + यच्छत) हे आदित्यगण ! वे आप भय-रहित कल्याण भवन देवें (नः + स्वस्तये + सुपथा + सुगा + कर्त्त) और हमारे कल्याणार्थ सुकर वैदिक मार्ग को सुगन्तव्य बनावें ।

शिक्षा-यहां मन्ता, बोद्धा, विज्ञानी, जीवात्मा का नाम मनुहै वह मनु नयन आदि सात होताओं और मन के साथ सदा अध्यात्म याग किया करताहै। ज्ञानविज्ञान रूप सुप्रकाश का नाम यहां आदित्यहै। इस शरीरमें मनुनामी जीवात्मा ज्ञानविज्ञानकी प्राप्ति की इच्छा से समाहित हो जो मननादि व्यापार करताहै यही महायज्ञहै। इसीसे निर्भयता और शोभनपथ प्राप्त होते हैं। यहां मन के साथ सप्त होता शब्दके पाठसे विस्पष्टतया सिद्धहै कि यहभी इन्हीं सात इन्द्रियोंका व्याख्यानहै। इसी अध्यात्म यज्ञको देख लोगोंने द्रव्यात्मक यज्ञकी रचनाकी। नयनादि सात होताओंकी जगहमें सात मनुष्य होता बनाये गए। मन के स्थान में ब्रह्मा, मनुके स्थान में यजमान कल्पित हुए। वेदों में

इस अध्यात्म यज्ञ का व्याख्यान विविध प्रकारसे आये हैं इसी हेतु द्रव्यात्मक यज्ञ में भी विभिन्नता होती गई।

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम्। येन यज्ञस्तायते सप्त होता तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ यजु० । ३४ । ३ ॥

(येन + अमृतेन) जिस अमृत अर्थात् शाश्वत अविनश्वर मनने (इदम् + भूतं + भुवनं + भविष्यत् + सर्वम् + परिगृहीतम्) भूत वर्त्तमान और भविष्यत् इस सब काल का ग्रहण किया है (येन + यज्ञः + तायते) जिस मन की सहायता से अग्निष्टोमादि यज्ञ विस्तीर्ण होता है (तत् + मे + मनः + शिवसङ्कल्पम् + अस्तु) वह मेरा मन शिवसङ्कल्प हो। यज्ञ कैसा है (सप्त + होता) जिसमें सात होता हैं।

वे सात होता कौन हैं? निस्सन्देह चक्षुरादि इन्द्रियही सप्त होता हैं। पश्चात् लोगों ने यजमान, होता, उद्गाता अध्वर्यु, ब्रह्मा, पोता, नेष्टा ये सात प्रकारके मनुष्य कल्पित किए। पश्चात् औरभी कल्पना बढ़ती गई। प्रत्येक वेदके चार२ ऋत्विक् बनाये गये। **ऋग्वेदीय**=होता, मैत्रावरुण, अच्छावाक्, ग्रावस्तुत्। **यजुर्वेदीय**=अध्वर्यु, प्रतिप्रस्थाता, नेष्टा, उन्नेता। **सामवेदीय**=उद्गाता, प्रस्तोता, सुब्रह्मण्य, प्रतिहर्ता। **अथर्ववेदीय**=ब्रह्मा, ब्राह्मणाच्छंशी, पोता, आग्नीध्र। **अथर्ववेदीय**=सात ऋत्विकोंके और भी नाम पाये जातेहैं वे ये हैं—सदस्य, पत्नीदीक्षिता, शमिता, गृहपति, अङ्गिरा, कैवर्त्त, चमसाध्वर्यु। एवं यजमान यजमानपत्नी इत्यादि संख्या बढ़ती गई।

॥ सप्त विप्र ॥

स सुष्टुभा स स्तुभा सप्त विप्रैः स्वरेणाद्रिं स्वर्यो नवग्वैः । सरण्युभिः फलिगमिन्द्र शक्र वलं रवेण दरयो दशग्वैः ॥ १ । ६२ । ४ ॥

(इन्द्र + शक्र) हे इन्द्र ! हे शक्र ! (सः) सुप्रसिद्ध वे आप (रवेण) शब्दमात्रसे (अद्रिम् + फलिगम् + वलम्) अद्रि, फलिग और वल इन तीन दुष्टों को (दरयः) विदीर्ण कर देते हैं । आप कैसेहैं (सप्त + विप्रैः) सात विप्रों से (स्वर्यैः) स्तूयमान हैं (स्तुभा + स्वर्यैः) पुनः आप उन सातों विप्रों को स्तुभ=अर्थात् स्तोत्रों से स्तूयमान हैं । वह स्तोत्र कैसा है (सुष्टुभा) जिस में सुन्दर २ स्तोत्र हैं पुनः (स्वरेण) वह स्तोत्र स्वर से संयुक्त है । वे विप्र कैसे हैं (नवग्वैः) नवग्व हैं पुनः (दशग्वैः) दशग्व हैं पुनः (सरण्युभिः) गमनशील हैं

व्याख्या=लोक में प्रसिद्ध है कि नवम अथवा दशम मास में मनुष्य उत्पन्न होता जो नवम मास में उत्पन्न हो उसका प्राण **नवग्व** और जो दशम मास में उत्पन्न हो उसका प्राण **दशग्व** कहाताहै क्योंकि रजोवीर्य्यके साथ ही प्राणों का भी बीज रहता है । अत एव ब्राह्मणग्रन्थों में वर्णन आताहै कि **अङ्गिरा ऋषि** दो प्रकारकेहैं एक **नवग्व** दूसरे **दशग्व** । जो नव मास में यज्ञ समाप्त करते

सप्तसिन्धु ।

यो हत्वाऽहि मरिणात्सप्त सिंधून्यो गा उदाजदपधा वलस्य । यो अश्मनोरंतरग्निं जजान संवृक्समत्सु स जनासइन्द्रः ॥ ऋग० २ । १२ ।३

(यः + अहिम् + हत्वा + सप्त + सिंधून् अरिणात्)जो अहि को मार सात नदियों को बहने के लिये प्रेरित करता है (यः + वलस्य + अपधा + गाः उदाजत्) जो वल के अवरोध= रुकावट से गौओं को निकाल लेता है(यः अश्मनोः अन्तः अग्निम् जजान) जो दो प्रस्तरों के बीच में अग्नि को उत्पन्न करता है (समत्सु संवृक्) जो विविध संग्रामों में शत्रुओं के काटनेहारा होता है (जनासः सः इन्द्रः) हे मनुष्यो ! वही इन्द्र है ।

व्याख्या—अहि= आप, अज्ञान । वल=पाप, अज्ञान, अन्धकार। **गो** = इन्द्रिय । **अश्मा** = शरीररूप पर्वत।**इन्द्र**= जीवात्मा । **सप्तसिंधु**=नयन आदि सात इन्द्रिय । जब अज्ञानरूप अन्धकार छा जाता है तो कर्त्तव्याकर्त्तव्य भूल जाते हैं जिन इन्द्रियों के द्वारा मनुष्य विचार करता है वे इन्द्रिय विचार से अलग हो जाते हैं । महामहादुष्कर्म्म में फंसकर जीवात्मा को कलङ्कित कर देते । जब इन्द्रयों की ऐसी दशा होजाती तब कहा जता है कि अहि, वृत्र, शम्बर, नमुचि, धुनि, चुमुरि और वल आदि असुर सप्त नदियों को बहने नहीं देते, मानो इन सप्त नदियों को

चारो ओर से बांध रखते। नदीरूप गौओं को हरणकर लेजाते इत्यादि। पश्चात् देवों के कल्याणार्थ इन वृत्र आदि असुरों से तुमुल संग्राम कर उन को मार सप्त नदियों को इन्द्र खोल देता है। तब वे नदियां पुनः बहने लगती हैं। वे गायें इन्द्र की कृपाद्वारा कारागार से निकल आती हैं इत्यादि यहां इन्द्रियों की दुष्ट प्रवृत्तियों के ही नाम अहि, वृत्र आदि हैं। ये असुर नाम से पुकारे जाते हैं क्योंकि "असुषुप्राणेषु रमतेयः सोऽसुरः" जो सत्कर्मों कोत्याग दुष्कर्मों में प्रवृत्त हो केवल प्राणों के ही भरण पोषण में लगा रहता है वह असुर कहाता, दुष्टेन्द्रिय असुर और शिष्टेन्द्रिय देव कहाते इन्हीं दोनों का जो अहोरात्र तुमुल युद्ध होरहा है इसी का नाम देवासुर संग्राम है। शुद्ध जीवात्मा इन्द्र और दुष्ट जीवात्मा वृत्र है सो यह जीवात्मा ईश्वरोपासनरूप महायज्ञ करके परम बलिष्ठ होता और तब सब दुष्टताओं को छोड़ देता यही इसका महाविजय है इसी प्रकार का आशय आगे भी रहेगा——

यः सप्तरश्मिर्वृषभस्तुविष्मानवासृजत्सर्तवे सप्त सिंधून्। यो रौहिणमस्फुरद्वज्रबाहुर्द्यामारोहन्तं स जना स इन्द्रः॥ ऋग् २। १२। १२॥

(यः सप्तरश्मिः) जो सप्तरश्मि नयनादि सात ज्योति वाला है (वृषभः) जो ज्ञान की वर्षा करनेहारा (तुविष्मान्) बलवान् (वज्रबाहुः) हाथ में वज्रधारी है वह

(सप्त सिन्धून् सर्त्तवे असृजत्) नयनादि सात नदियों को बहने के लिये बनाता है (यः द्याम् आरोहन्तम् रौहिणम्) जो द्युलोक की ओर आते हुए रौहिण को (अस्फुरत्) मारता है (जनासः सः इन्द्रः) हे मनुष्यो ! वह इन्द्र है ।

व्याख्या—इन्द्र = जीवात्मा । रौहिण = अज्ञान । द्यौ = द्युलोक, प्रकाश, ज्ञान । ज्ञानरूप महाज्योति को ढांकने के लिये जब अज्ञान दौड़ता है तब जो जीवात्मा धर्म्मनिष्ठ बलिष्ठ और पापरूप असुरों के निपात के हेतु सदा हस्त में विवेकरूप महास्त्र रखता है वह उसको मार देता है अपने समीप कदापि अज्ञान को नहीं आने देता । और ऐसे जीवात्मा की सातों इन्द्रियरूप नदियां अच्छे प्रकार अपने अपने विषयों में निरुपद्रव रूप से प्रवाहित होती रहती हैं ।

अश्व्यो वारो अभवस्तदिन्द्र सृके यत्त्वा प्रत्यहन् देव एकः । अजयो गा अजयः शूर सोममवासृजः सर्तवे सप्त सिन्धून् ॥ ऋग् १ । ३२ । १२ ॥

(इन्द्र यद् एकः देवः) हे इन्द्र ! जब एक देव अर्थात् मदकारी मदोन्मत्त वृत्र नाम का एक असुर (सृके त्वा प्रत्यहन्) आप से वज्र छीन लेने के हेतु आप के ऊपर प्रहार करता है तब आप (अश्व्यः वारः अभवः) अश्व (घोड़े) के समान बलिष्ठ होते हैं (शूर गाः सोमम् अजयः) हे शूर ! अवरुद्ध गौवों को और सोम को जीत लेते हैं पश्चात् (सप्त सिन्धून् अवासृजः) सप्त नदियों को बहाते हैं ॥

अहेर्यातारं कमपश्य इन्द्र हृदि यत्ते जघ्नुषो भीर-गच्छत्। नव च यन्नवतिश्च स्रवंतीः श्येनो न भीतो अतरो रजांसि ॥ ऋग् १ । ३२ । १४ ॥

(इन्द्र जघ्नुषः ते हृदि यद् भीः अगच्छत्) हे इन्द्र! शत्रु के हनन कर्त्ता आपके हृदय में जो भय आया है इसका क्या कारण (कम् अहेः यातारम् अपश्यः) अपने को छोड़ किस अन्य देव को अहि के मारनेहारे देखते हैं । आप को छोड़ कौन दूसरा अहि को मार सकता अतः आप क्यों डरते हैं! (भीतः श्येनः न) भयभीत श्येन पक्षी के सदृश आप (यत् नव च नवतिञ्च) जो नौ ९ और ९० (स्रवन्तीः रजांसि अतरः) बहती हुई नदियों के पार उतर गए हैं।

समीक्षा=यहां मैंने संक्षेप से दिखलाया कि वृत्र आदि असुरों को मार सप्त सिन्धुओं को इन्द्र प्रवाहित करता है पृथिवी पर शतशः नदियां हैं तब सप्त पद बार २ क्यों आते हैं? इस से सिद्ध है कि यह नियत संख्या किसी नियत संख्या ही की सूचना देनेहारी होसकती अन्य की नहीं वे नियत सात शिरस्थ नयनादिक ही हैं अन्य नहीं इनहीं नियत सातों को ये वेदमंत्र दिखला रहे हैं पुनः एक ऋचा में देखते हैं कि यह इन्द्र भय खारहा है । उपासक कहता है कि इन्द्र! तू मत भय कर तू ९९ नदियों को पार कर आया है अब कोई चिन्ता की बात नहीं इत्यादि। वे कौन हैं? समाधान-पञ्च ज्ञानेन्द्रिय, पञ्च कर्मेन्द्रिय, और

एक मन ये ११ इन्द्रिय होते हैं उत्तम, मध्यम, अधम, भेद से ये ३३ होते हैं। ये ही ३३ देव हैं । जिस हेतु लोक में देखते हैं कि शिष्टों की अपेक्षा दुष्ट अधिक हैं। अतः वेद भगवान् कहते हैं कि देवों की संख्या की अपेक्षा असुर-गण त्रिगुणित अधिक हैं अर्थात् ३३×३=९९ हैं इसी कारण इन्द्र द्विनयन, एकशिरस्क, किन्तु वृत्र षडक्ष (छःनेत्रवाला) और त्रिमूर्धा कहाता है अर्थात् इन्द्र की अपेक्षा वृत्र त्रिगुण है। अतः देवों की ३३ तैंतीस संख्या कि अपेक्षा त्रिगुण ३×३३=९९ निन्यानवे असुर हैं। ये ही निन्यानवें पापरूप नदियां हैं इनको जब तक जीवात्मा लांघता नहीं तबतक भयभीत होता रहता यहां उपासक अपने आत्मा को समझाता है अब चिन्ता की कोई बात नहीं तू इन ९९ नदियों का पार उतरआया । यहां यह ९९ संख्या भी नियत संख्या को ही सूचित कररही है। ये ३३ तैंतीस इन्द्रिय जब दुष्टकर्मों में प्रवृत रहते हैं तब ये त्रिगुणित ९९ असुर कहाते हैं। ये अगाध दुस्तर ९९ नदियां हैं। इससे भी सिद्ध है कि यह सब वर्णन इसी शरीर का है इसको छोड़ बाह्य जगत में ७ अथवा ९९ नदियों की गवेषणा करनी सर्वथा अवैदिक अर्थ और अज्ञानता की बात है।

॥ सप्त नदियां और यश ॥

अस्य श्रवो नद्यः सप्त बिभ्रति द्यावाक्षामा पृथिवी दर्शतं वपुः। अस्मे सूर्याचन्द्रमसाभिचक्षे श्रद्धे कमिन्द्र चरतो वितर्तुरम् ॥ऋग् १।१०२।२॥

(सप्त नद्यः अस्य श्रवः बिभ्रति) सात नदियां इसके महान् यश को धारण करती हैं (द्यावाक्षामा पृथिवी वपुः दर्शतम्) द्यु लोक और यह विस्तीर्ण पृथिवी उसका शरीर दिखला रही है (अस्मे श्रद्धे) हमलोगों की श्रद्धा के निमित्त (इन्द्र अभिचक्षे सूर्याचन्द्रमसा) हे इन्द्र! प्रत्यक्षतया ये सूर्य और चन्द्र (कम् वितर्तुरम् चरतः) सुखपूर्वक निरन्तर विचरण कररहे हैं। जो सात नदियां इस परमात्मा की महती कीर्ति को धारण किये हुए हैं वे कोई विलक्षण होनी चाहियें वे सात नदियां निस्सन्देह ये सप्त इन्द्रिय हैं येही भगवान् के परम यश को प्रख्यात कररहे हैं॥

य ऋक्षादंहसो मुचद् यो वाऽऽर्यात् सप्त सिन्धुषु।
वधर्दासस्य तुविनृम्ण नीनमः॥ ऋग् ८।२४।२७॥

(यः अंहसः ऋक्षात् मुचत्) जो इन्द्र शुद्ध जीवात्मा पापरूपी रीछ से उपासक को छुड़ाता है (यः वा सप्त सिन्धुषु आर्यात्) अर्थात् जो सात नदियों के तटपर धन भेजता है (तुविनृम्ण) हे बहुधन इन्द्र! वह आप (दासस्य वधः नीनमः) नाशकरनेहारे दुष्ट असुरों के लिये हनन साधक आयुध को नमित कीजिये। यही नयन आदि सप्तेन्द्रिय सप्तसिंधु हैं शुद्ध जीवात्मा पाप से उपासक को छुड़ा इन्द्रियरूप सप्त सिन्धुओं को विज्ञानरूप विविध धन भेजता है।

दुहन्ति सप्तैकामुप द्वा पञ्च सृजतः । तीर्थे सिन्धो रधि स्वरे ॥ ऋग् । ८ । ७२ । ७ ॥

(अधिस्वरे सिन्धोः तीर्थे) शब्दायमान सिन्धु के तीर्थ पर (सप्त एकाम् दुहन्ति) एक गौ को सात जन दुहते (पञ्च द्वा सृजतः) पांचों को दो कार्य में लगा रहे हैं ।

व्याख्या=वाणी वा विद्या एक गौ है । सप्त=नयन आदि सप्त इन्द्रिय । पञ्च=पांच ज्ञानेन्द्रिय स्थान-भेद से सात गिनती होती है परन्तु ज्ञानभेद से पांच इन्द्रिय हैं । दोनों नयन से एक दर्शनक्रिया । दोनों कर्णों से एक श्रवणक्रिया । दोनों घ्राणों से एक सूंघने की क्रिया जिह्वा से एक स्वाद क्रिया । त्वचा से एक स्पर्शक्रिया । येही पंच ज्ञानेन्द्रिय हैं । दो=मन और जीव ये दोनों पञ्च ज्ञानेन्द्रियों को कार्य में लगाये हुए रहते हैं । सिन्धु=बहने हारा यह शरीर । इस देह के अभ्यन्तर सदा शब्द होता रहता है । इस शब्दायमान शरीररूप सिन्धु के तट पर ये सप्तेन्द्रिय विद्यारूपा गौ को दुहा करते हैं । मन और जीवात्मा दोनों इनको कार्य्य में लगाए हुये रहते हैं । यही इसका भाव है । वेदजिज्ञासु पुरुषो ! यहां यह वार-वार विचारणीय है कि वैदिक नियत संख्या किसी नियत संख्या का ही वर्णन करेगी ॥

सप्त परिधि और पुरुष पशु—

सप्तस्याऽऽसन् परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः । दे

वा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन् पुरुषं पशुम् ।
यजुः ॥३१ । १५ ॥

(यज्ञम् तन्वानाः) यज्ञ को करते हुए (यद्) जब (देवाः) देव (पुरुषम् पशुम् अबध्नन्) पुरुष पशु को बांधते हैं तब (अस्य सप्त परिधयः आसन्) इस यज्ञ के सात परिधि होते हैं और (त्रिः सप्त समिधः कृताः) त्रिगुणित सप्त अर्थात् २१ समिधाएं होती हैं ॥

व्याख्या—अब इस ऋचा के अर्थ में भी किञ्चित् सन्देह न रहेगा । पुरुषपशु—प्रत्येक शरीर में रहनेहारा जीवात्मा ही यहां पुरुषपशु है, नयन आदि सात इन्द्रिय यहां परिधि हैं । चारों तरफ़ के घेरे का नाम परिधि है जैसे कभी २ सूर्य और चन्द्रमा के चारों तरफ गोलाकार रेखा बनी हुई प्रतीत होती है । इनहीं सातों के उत्तम, मध्यम, और अधम भेद से २१ प्रकार के जो विषय हैं येही यहां २१ समिधाएं हैं वेदों में भूरि२ ऐसा वर्णन आता है कि वत्स के समान यह जीव रस्सी में बन्धा हुआ है । इसके ऊपर, मध्य और नीचे तीन स्थानों में फन्दे लगे हुए हैं इत्यादि । जब इन्द्रियों का अधिष्ठातृरूप देव इस जगत् में आके शुभाशुभ कर्मरूप यज्ञ करना चाहता है तब जीवात्मा के चारों तरफ़ से घेरनेहारे येही सप्तेन्द्रिय सात परिधि होते हैं । और इनकी विषय वासनाएं मानो इनके भोजन होते हैं । इस प्रकार जीवात्मरूप पशु को बांध के देवगण यज्ञ करते हैं । ऐ वैदिक पुरुषो ! ऐसे २ ही वर्णन देख के यज्ञों में गौ

भैंस, छाग, मेष, आदि पशुओं को बांध मरवानेलगे। यह कैसी शोकजनक अवनति हुई। जो अध्यात्मपरक यज्ञ था वह आज घृणित द्रव्यमय होगया

गङ्गा यमुना आदि सप्त नदियां ॥

इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्ण्या। असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तयाऽऽर्जीकीये शृणुह्या सुषोमया ॥ ऋग् । १०।७५। ५ ॥

(गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रि परुष्णि) हे गङ्गे ! हे यमुने ! हे सरस्वति ! हे शुतुद्रि ! हे परुष्णि ! (मे इमम् स्तोमम् आसचत) मेरे इस स्तोत्र की सब प्रकार से सेवा करो ! (मरुद्वृधे आर्जीकीये) हे मरुद्वृधे ! हे आर्जीकीये (असिक्न्या वितस्तया सुषोमया आशृणुहि) असिक्नी, वितस्ता, और सुषोमा के साथ मेरे स्तोम को सुनो ॥

व्याख्या—गङ्गा– गमन करनेहारी। यमुना– चलनेहारी। सरस्वती– जलपूर्णा। शुतुद्री– शीघ्र दौड़नेहारी। परुष्णी– कुटिलगामिनी । मरुद्वृधा– वायुसेबढ़नेहारी आर्जीकीया– ऋजुगामिनी। असिक्नी– अशुक्ला, तामसी। वितस्ता– विवृद्धा विस्तीर्णा। सुसोमा– परम शान्तिप्रदा, सौम्यगुणयुक्ता। प्राचीनों ने इनकी इसी प्रकार निरुक्ति की है। सप्त नदी वा सप्तसिंधुआदि पद वेदों मेंबहुत आये हैं इस पुस्तक में भी दो चार उदाहरण दिए गए हैं यहां नदीवाचक सात और तीन नाम भी पाए जाते १-

गङ्गा २–यमुना ३–सरस्वती ४–शुतुद्री ५--परुष्णी ६-मरुद्वृधा और ७--आर्जीकीया ये सातों नाम सम्बोधनयुक्त और १--असिक्नी २--वितस्ता और ३–सुषोमा ये तीनों पद तृतीयान्तयुक्त आये हैं। जहां २ सप्त सिन्धु आदि पद हैं वहां २ सायणादि भाष्यकार गङ्गादि सप्त नदियां अर्थ करते हैं। परन्तु मैंने पूर्व में अनेक उदाहरणों से सिद्ध कर दिखलाया है कि सप्त सिन्धु पद से नयनादि सप्तेन्द्रियों का ग्रहण है । यहां उन सातों के विशेष नाम दिए हुए हैं। यही विशेषता है। अब जो असिक्नी, वितस्ता और सुषोमा ये तीन नाम हैं। वे उत्तम, मध्यम और अधम अर्थसूचक हैं वेदों की इस शैली पर सदा ध्यान देना चाहिये कि वेद भगवान् सामान्य वाचक शब्द कहते २ नित्य व्यक्तिवाचक शब्द भी कह देते हैं और उनमें चेतनत्व का आरोप करके चेतन व्यक्तिवत् वर्णन करते हैं। वैदिक इतिहासार्थ निर्णय नाम के ग्रंथ में यह बात विस्तृतरूपसे वर्णित है। जैसे नयन आदिकों को वे सप्त ऋषि कहते हैं अब कहीं इनके पृथक् २ सात नाम रखकर भी वर्णन करेंगे। इसी प्रकार ३३ देव, पञ्च मानव, सप्त प्राण, सप्त लोक आदि। अब यहां यह भी स्मरणीय बात है कि जब इन्द्रियों को लोक कहेंगे तब तत्सदृश ही नाम भी रक्खेंगे जैसे भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्यम् । जब इन्हें असुर कहेंगे तब शम्बर, नमुचि, धुनि, चुमुरि, वल, अहि, वृत्र

आदि नाम देवेंगे। जब इन्हें पशु कहेंगे तब गौ, मेष, अज, वृक, ऋक्ष, सिंह, व्याघ्र आदि । इसी प्रकार जब इनको नदी नाम से पुकारेंगे तब गङ्गा, यमुना, सरस्वती, शुतुद्री, परुष्णी, मरुद्वृधा और आर्जीकीया कहेंगे । पुनः यहां सातही नाम क्यों ? अतः सिद्ध है कि यह सप्तेन्द्रिय का वर्णन है बाह्य नदियों का नहीं ।

प्रश्न—आपने जो अर्थ किया है वह ठीक है किन्तु प्रथम गङ्गा आदि नदियों को वैदिक कवि देख तब ऐसा वर्णन किये हों ऐसा संभव है। **समाधान**—नहीं। वेदों में अनित्य और एकदेशी पदार्थ का वर्णन नहीं आता। वेदों में आकृति का वर्णन है व्यक्ति का नहीं। इस विषय को वैदिकइतिहासार्थ नि० में देखिये। यह संभव नहीं कि वसिष्ठ विश्वामित्र आदिकों को देख तब नयनादिकों को वसिष्ठादिकहने लगे हों किन्तु वेदों के नामों को लेकर पीछे ये नाम सब मनुष्यों के रक्खे गये हैं इसी प्रकार नदी प्रभृतियों के नाम भी वैदिक नामों पर रक्खे गए। **शङ्का**—इसऋचा में असिक्नी, वितस्ता और सुसोमा ये तीन नाम भी तो आए हैं ! पुनः सातही नदियां कैसे कही जातीं। **समाधान**—येतीनोंश्रेणीवाचक शब्द हैं । पृथक् २ किसी नदीका नाम नहीं क्योंकि असिक्नीशब्दार्थ अशुक्ला अर्थात् कृष्णा, तामसी। वितस्ता शब्दार्थ विवृद्धा राजसी और सुसोमाशब्दार्थ सुसौम्या सात्त्विकी है अर्थात् ये सप्तेन्द्रिय उत्तम, मध्यम और अधम भेद से २१ प्रकार के हैं। इसी कारण अन्यान्य

ऋचाओं में ३×७=२१ नदियों की चर्चा देखते हैं यथा—
त्रिः सप्त सस्रा नद्यो महीरपः ऋग् १०।६४।८। प्र
सप्त सप्त त्रेधाहि चक्रमुः । ऋग् १०।७५।१।

नदी सम्बन्धी दो घटनाएं।

वसिष्ठ और नदियां—मैं अब नदियों के सम्बन्ध में केवल दो ऋषियोंकी घटनाएं दिखलाताहूं इससे पता लगेगाकि यह केवल रूपकालङ्कारमात्रहै। निरुक्त दैवतकाण्ड अ० ३।२६ में यास्क कहते हैं। आर्जीकीयां विपाडित्याहुः।...पाशा अस्यां व्यपाश्यन्त वसिष्ठस्य मुमूर्षतस्तस्माद्विपाडित्युच्यते। आर्जीकीया को विपाट् कहतेहैं क्योंकि मरनेकी इच्छा करते हुए वसिष्ठ के पाश (फांस) इसी में टूटे थे ॥ विपाट् को पौराणिक भाषा में विपाशा नदी भी कहते हैं। महाभारत के आदिपर्व में विश्वामित्र और वसिष्ठ की संग्रामसम्बन्धी अतिविचित्र कथा लिखी हुई है। गौ के कारण इन दोनों में महाकलह उत्पन्न हुआ। एक समयकी बातहै कि वसिष्ठके प्रायः सब सन्तानों को विश्वामित्र ने मरवा दिया। इस शोक में वसिष्ठजी अपने शरीर को पाशों से खूब मज़बूत बांध किसी एक नदी में मरणार्थ गिरगये वह नदी ऋषिके सब पाशों को तोड़ स्थल में ले आई। अपने में उन को डूबने नहीं दिया। यह विचित्र लीला देख उस नदी का नाम विपाशा रख ऋषि आगे चले। पुनः मरने की इच्छा से किसी दूसरी नदी में जागिरे। वह नदी भी

शतमुख हो इधर उधर भाग गई ! ऋषि को अपने में न मरने दिया ! अतः उस नदी का नाम शतद्रु हुआ ! प्रमाण--

ततः पाशैस्तदात्मानं गाढं बध्वा महामुनिः । तस्या जले महानद्या निममज्ज सुदुःखितः ॥ अथ छित्वा नदी पाशांस्तस्यारिबलसूदन । स्थलस्थं तमृषिं कृत्वा विपाशं समवासृजत् ॥ ...सा तमग्निसमं विप्रमनुचिन्त्य सरिद्वरा । शतधा विद्रुता यस्माच्छतद्रुरिति विश्रुता । महा० आदि पर्व । अ० १७६ ॥

समीक्षा—प्रथम यहां देखते हैं कि वेद में शुतुद्री शब्द है उसको महाभारत ने शतद्रु बनाया। अब वसिष्ठ शरीर को दृढ़तर बांध नदी में कूद पड़ते किन्तु नदी इनके पाशों को तोड़ तट पर ले आती । इसी प्रकार मुमूर्षु ऋषि को देख नदी भाग जाती । इसका क्या भाव है ? क्या नदी कोई चेतन है जो इस तरह समझती ? । नहीं । नदी चेतन नहीं । नदी ऐसा काम नहीं कर सकती । यह केवल आलङ्कारिक वर्णन है । ईश्वरोपाशक का नाम यहां वसिष्ठ है। ये इन्द्रिय ही नदियां है । उत्तम बुद्धि ही यहां नन्दिनी धेनु है । विश्वामित्र--जगत् का अमित्र, शत्रु, अविवेक, अज्ञान, लोभ, मोह, आदि विश्वामित्र हैं (यहां ऋषि विश्वामित्र से तात्पर्य नहीं है । ऋषि अर्थ में विश्वमित्र को ही विश्वामित्र कहते हैं) ईश्वरभक्तों को प्रथम अविद्या, अ-

काम, लोभ, मोह आदि बहुत तंग करते हैं। इन की गो-रूपा बुद्धि को हरण करना चाहते हैं। कोई उपासक बहुत विघ्न देख आत्मघात करना चाहता। विवेक मना करता है कि ऐसा मत करो। मानो, सब इन्द्रिय समझाते हैं कि तुम चिन्ता मत करो। अब हम सब तुम्हें क्लेशित न करेंगे तुम अब सिद्ध होगए। समाहित हो ईश्वर की ओर जाओ। उपासक घबराता है और इन्द्रिय समझाते हैं। धीरे २ इन्द्रिय वश में आते जाते हैं। इसी घटना को विश्वामित्र और वसिष्ठ दो नाम मानकर कवि वर्णन करताहै। इस से भी सिद्ध है कि यह किसी बाह्य नदी का वर्णन नहीं। क्या ऐसी घटनाएं आप लोगों के जीवन में नहीं होती ॥

नदी और विश्वामित्र—यास्क शौनक आदि ऐसी कथा कहते आये हैं कि एक समय पैजवन सुदा राजा के पुरोहित विश्वामित्र हुए। वहां से बहुत धन लेकर विपाट् (विपाशा) और शुतुद्री के संगम पर आये। इन के पीछे २ लूटने को डाकू भी पहुंचे। विश्वामित्र इस असमंजस को देख शीघ्र पार उतरने के लिये नदियों को पुकार २ कहने लगे। हे नदियो! तुम गाधा अर्थात् पार उतरने योग्य हो जाओ इत्यादि। इस समय विश्वामित्र और नदियों में जो संवाद हुआ है वह कई एक ऋचाओं में वर्णित है कुछ ऋचाएं मैं यहां उद्धृत करता हूं ॥

एना वयं पयसा पिन्वमाना अनु योनिं देवकृतं चरन्तीः । न वर्त्तवे प्रसवः सर्गतक्तः किंयुर्विप्रो नद्यो जोहवीति ॥ ३ । ३३ । ४ ॥

(एना पयसा पिन्वमानाः) इस धारा से सींचती हुई (वयम् देवकृतम् योनिम् अनु चरन्तीः) हम नदियां देवकृत स्थान को जारही हैं (सर्गतक्तः प्रसवः न वर्त्तवे) उन हम सब का आदि काल से प्रवृत्त जो उद्योग है वह निवृत्त के लिये नहीं है अर्थात् हम नदियां कदापि ठहर नहीं सकतीं । तब (किंयुः विप्रः नद्यः जोहवीति) किस इच्छा से यह विप्र नदियों को पुकार रहा है ॥ ४ ॥

रमध्वं मे वचसे सोम्याय ऋतावरीरुप मुहूर्त्तमेवैः । प्र सिन्धुमच्छा बृहती मनीषाऽवस्यु रह्वे कुशिकस्य सूनुः ॥ ३ । ३३ । ५ ॥

विश्वामित्र कहते हैं कि (ऋतावरीः) हे जलपरिपूर्ण नदियो ! (मे सोम्याय वचसे) मेरे सुन्दर वचन के लिये (एवैः मुहूर्त्तम् उपरमध्वम्) अपने गमन से मुहूर्त्त मात्र ठहर जावें (बृहती मनीषा अवस्युः) बड़ी लम्बी चौड़ी स्तुति कर के रक्षा चाहने हारा (कुशिकस्य सूनुः) यह कुशिक का पुत्र मैं (सिन्धुम् अच्छा प्र अह्वे) सिन्धु की ओर से पुकार रहा हूं ॥

इन्द्रोऽस्माँ अरदद् वज्रबाहु रपाहन् वृत्रं परिधिं नदीनाम् । देवोऽनयत्सविता सुपाणिस्तस्य वयं

प्रसवे याम उर्वीः ।६। प्रवाच्यं शश्वधा वीर्यं तदिन्द्रस्य कर्म्म यदहिं विवृश्चत् । वि वज्रेण परिषदो जघानाऽऽयन्नापोऽयनमिच्छमानाः ७ ॥

नदियां कहती हैं हे विश्वामित्र ! (वज्रबाहुः इन्द्रः अस्मान् अरदद्) वज्रबाहु इन्द्रने हमको खोद कर तैयार किया है (नदीनाम् परिधिम् वृत्रम् अपाहन्) नदियोंके चारों तरफ घेरे हुए वृत्र का इन्द्र ने हनन किया (सविता सुपाणिः देवः अनयत्) वह प्रेरक सुपाणि इन्द्रदेव ही हमको लेकर आया है अर्थात् वृत्रको मार इन्द्र हमारी रक्षा किया करताहै (तस्य प्रसवे उर्वीः वयम् यामः) उसी की आज्ञा के ऊपर हम जलसे पूर्ण हो जारही हैं। हे कुशिकपुत्र विश्वामित्र ! तब आपकी आज्ञा मानकर कैसे ठहरें (इन्द्रस्य तद् वीर्यम् कर्म्म शश्वधा प्रवाच्यम्) इन्द्र के उस वीर्य्य और कर्म्म को सदा कहना चाहिये (यद् अहिम् विवृश्चत्) जो यह इन्द्र अहि को काटा करताहै (वज्रेण परिषदः विजघान) और जो वज्र से चारों तरफ बैठे हुए प्रतिबन्धकारियों का हनन किया करता है जिसके मरने से (अयनम् इच्छमानाः आपः आयन्) अपने स्थान को चाहनेहारी ये नदियां सुख से जारही हैं ।

ओ षु स्वसारः कारवे शृणोत ययौ वो दूरादनसा रथेन । नि षू नमध्वं भवता सुपारा अधो अक्षाः सिन्धवः स्रोत्याभिः ॥ ९ ॥

पुनः विश्वामित्र कहते हैं कि (स्वसारः सिन्धवः) ऐ भगिनी नदियो ! (कारवे) स्तोत्र करनेहारे मेरे वचन को (श्री + सु + शृणोत) अच्छे प्रकार श्रवण कीजिये (दूरात् अनसा रथेन वः ययौ) दूर प्रदेश से मैं शकट और रथ के द्वारा आपके निकट आया हूं इस कारण (नि + सु + नमध्वम्) आप सब तरह से नम्र होजांय (सुपाराः भवत) सुन्दर पार होने योग होवें (स्रोत्याभिः अधोअक्षाः)धाराओं से पहिये के नीचे हो जांय ॥ ९ ॥

आ ते कारो शृणवामा वचांसि ययाथदूरादनसा रथेन । नि ते नंसै पीप्यानेव योषा मर्यायेव कन्या शश्वचै ते ॥ १० ॥

नदियां कहती हैं (कारो) हे स्तोत्रकर्त्ता ऋषे ! (ते वचांसि आ शृणवाम) तेरे वचनों को अब हम सब अच्छी तरह सुन रही हैं । (अनसा रथेन ययाथ) शकट और रथ के द्वारा चले जाइये क्योंकि आप (दूराद्) दूर से आए हुए हैं (ते नि नंसै) आपके लिये हम नीचे हो जाती हैं (पीप्याना इव योषा) जैसे पुत्र को दूध पिलाती हुई माता झुक जाती है (कन्या मर्याय इव शश्वचै) जैसे कन्या पिता भ्राता आदि मनुष्य के निकट नम्र होती है तद्वत् (ते) आपके लिये हम नदियां झुक जाती हैं । आप पार उतर जांय ॥ १० ॥

व्याख्या—यह संवाद अति मनोहर है । एक ओर न-

दियां कहती हैं कि हम सब इन्द्रकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं करेंगी। हमारे प्रतिबन्धक वृत्र और अहि को मार के यह देव हमको संकट से बचा लेता है इसके कर्म अद्भुत हैं। इसकी कृपा से स्वतन्त्र हो स्वेच्छानुसार हम अपने नियोग कर रही हैं। यह कौन विप्र है जो हमें रोकके कुछ सुनाना चाहता है हमें इतनी कब छुट्टी कि अपनी गति को रोक इसकी बात सुनें। इत्यादि। दूसरी ओर ऋषि विश्वामित्र जोरसे चिल्ला के कहते हैं ऐ नदियो ! आप मेरी स्वसाएं अर्थात् बहिनें हैं। केवल एक मुहूर्त ठहरें। मेरे इस सुन्दर यज्ञिय वचन को सुन लेवें। मैं बहुत दूरसे आया हूं। अब यदि आप कुछ नम्र न होंगी इसीतरह आगाधा रहेंगी तोमैंनष्ट होजाऊंगा। देखिये बहिनो ! मैं कारु अर्थात् स्तोत्रकर्त्ता हूं आप को स्तुति सुनाया करता हूं मैं भी कुशिक का पुत्र हूं इससम्बन्ध को देख के भी मुझ पर दया कीजिये। ऐसे विलपते हुए ऋषि को देख नदियों को दया आती है और परितुष्ट होके कहती हैं कि हे ऋषे ! जाइये पार होजाइये आप के लिये हम गाधा हो जाती हैं इसके आगे यह कथा है कि ऋषि सब को प्रथम पार उतार नदियों को धन्यवाद दे स्वयं भी पार उतर जाते हैं। इस संवाद का क्या आशय है ? क्या सचमुच ऋषि से नदियां बोली। ? क्या विश्वामित्र पागलथे जो जड़ नदियों को पुकार२ अपनी बातें सुनाने लगे। या नदियां पूर्वकाल में मनुष्यवत् बोला करती थीं। ऐसी कथा से वेद का क्या आशय है ? समाधान--इसका भाव

विस्पष्ट है न नदियां चेतन थीं न यह संवाद किन्हीं विशेष नदियों और ऋषि का है। यहभी इसी इन्द्रियोंका वर्णन है इन्द्र = जीवात्मा। विश्वामित्र=विश्वमित्र अपने और प्राणीमात्रका जो मित्र हो वह विश्वामित्र। कुशिक—प्रकाशकर्त्ता परमात्मा वा जीव ॥ अब आशय इसका यह हुआ कि सर्व हितकारी जो उपासकहै वह जब साधनसम्पन्न होता है तब बीचमें अनेक विघ्न उपस्थित होने लगते हैं उस समय उपासक घबरा जाताहै। विघ्नकरनेहारे कौन हैं? निस्सन्देह ये इन्द्रियगणही हैं। जैसे नदियां जलपरिपूर्ण हो अपनी विभूतियां दिखलाती हुईं बहती हैं वैसे विषय वासनारूप जलोंसे परिपूर्ण हो ये इन्द्रियगण इधर उधर बराबर दौड़तेरहतेहैं। उससमय यह उपासक कहताहै कि ऐ इन्द्रियो! मेरा बचन सुनो तुम मुझे पार उतारदो। तुम ऐसे उद्धत मत होओ। नम्र हो जाओ मैं भी उसी परमात्मा वा जीवात्मा का पुत्र हूं। मुझे तुम क्यों क्लेश देते हो। इस प्रकार जो उपासक सदा इन्द्रियों को समझाता रहता निःसन्देह उसके लिये ये इन्द्रियगण नम्र हो जाते। वह उपासक इस शरीररूप रथ पर चढ़ कर पार उतर जाता। यदि कहा जाय कि इन्द्रियगण भी तो जड़ हैं उनको ही समझानेसे कौन लाभ होसक्ता? समाधान—इन्द्रियों को अथवा मनको समझाना तो अपनेको ही समझाना है यह विचारकर देखिये: यह मानव स्वभाव है कि होनहार मनुष्य अपने आप को सदा समझाता

बुझाताहै। यह इन्द्रियोंका ही वर्णन है क्योंकि पूर्व में कहा गयाहै कि वृत्र अहि आदि असुरोंको मार इन्द्र नदियोंको बहनेके लिये प्रेरित करताहै इत्यादि। यहां वे ही नदियां कहतीहैं कि हम इन्द्रकी आज्ञाको मानतीहैं उसी की कीर्त्ति गातीहैं। वह वृत्रको मार हमारी रक्षा करता है इत्यादि। अनेक समानताओं से सिद्धहै कि यह वर्णन भी इन्द्रियोंका है। पश्चात् कुशिकस्य सूनुः विश्वामित्रआदि पद देख ऐतिहासिकोंने विविध गाथाएं कल्पित की हैं। मामतेय ऋषि **दीर्घतमा** की भी ऐसीही आख्यायिका है॥

गङ्गा की उत्पत्ति—यह गाथा भी परार्थसूचक है। सगर=जलयुक्त आकाश का नामहै निघण्टु १।३। पृथिवी पर की छोटी २ नदियां सगरपुत्र हैं। सूर्य का नाम **भगीरथ** है। तेजोरूप महान् ऐश्वर्य्ययुक्त जिस का रथ हो। वेदों में आकाश पुत्र सूर्य माना गया है। **कपिल** अग्नि का नाम है अर्थात् ग्रीष्मऋतु ही कपिल है अतएव पुराणों में कपिल को अग्न्यवतार भी मानते हैं। पर्जन्य(मेघ) देव का नाम **रुद्र** है। ग्रीष्मऋतुरूप कपिल जब सगर पुत्रों को दग्ध कर देता तब सगर शोक संतप्त हो मानो, पुत्रों के उद्धारके लिये उपाय सोचताहै। तब सगर वंशोद्भव भगीरथ (सूर्य) पर्ज्जन्य देव को प्रसन्न कर अर्थात् मेघों को बनाकर महती जलधारारूप गङ्गा को पृथिवी पर छोड़ता है पुनः नदियां जलों से भर जाती हैं। यही सगरपुत्रों का उद्धार है। मानो

सगर अर्थात् आकास का पुत्र यह पृथिवीस्थ समुद्र है अतः इसको सागर कहते हैं (सगरस्य अपत्यम्) त्रिदेवनिर्णय में विस्तार से वर्णित कथा को देखिये। क्या ही आश्चर्य की बात है क्या था और अब क्या होगया। हे भगवन्? इस महापरिवर्त्तन के कारण भी तो आप ही हैं!

सप्त लोक और सप्त पाताल—यह जो केवल चौदह खण्डयुक्त शरीर का विवरण था अब चौदहलोक बन गए। हजारों श्लोकों में इनका पुराण वर्णन करते हैं। विष्णु पुराण के द्वितीय अंश में बहुत विस्तार से सप्त लोक की चर्चा आईहै। पृथिवीसे लेकर उपरिष्ठ सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को एवं भूमि के नीचे सम्पूर्ण प्रदेश को सात २ भागों में बांटते हैं। ऊपर के भागों के क्रम से ये नाम हैं—भूः भुवः स्वः महः जनः तपः सत्यम् और नीचे के भाग अतल, वितल, नितल, गभस्तिमत्, मह तल, सुतल और पाताल। परन्तु भागवत के अनुसार अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल रसातल, पाताल कहाते हैं। ये भूः भुवः इत्यादि लोक यही नयन दि सप्तेन्द्रिय हैं। अभीतक सन्ध्या के प्राणायाम काल में ये सातों पढ़े जाते हैं। प्राणों के आयास=व्यायाम को प्राणायाम कहते हैं। प्राण नाम इन्द्रियों का है यह प्रसिद्ध है। इन्हीं सातों इन्द्रियों को योग्य बनाने के लिये प्राणायाम किया जाता है। प्राणायाम से ये सप्तक वशीभूत हो अपने योग्य कार्य में लगते हैं अन्यथा उच्छृंखल हो उपासक को भ्रष्ट करते हैं। विचारने की बात है कि प्राणाया.. काल में

ऐसात प्रणव क्यों पढ़े जाते। इससे सिद्ध है कि यह सप्तेन्द्रियमात्र का वर्णन है। ये ईश्वर के नाम भी हैं। ईश्वर से प्रार्थना करते हुए इन सातों को अपने वश में लावें यही प्राणायाम का उद्देश है। अब जो नीचे सप्त लोक माने जाते हैं वे दो हस्त, दो चरण, मलेन्द्रिय, मूत्रेन्द्रिय और गर्दनसे लेकर कटिपर्यन्त एक भाग ये ही सात हैं। इसीका नाम चतुर्दश भुवनहै। अन्य चतुर्दश भुवन कोई नहीं। जिज्ञासुपुरुषो! नियत संख्यात पदार्थ की ओर आइये। अनियत की ओर मत जाइये। शरीर में ये चतुर्दश स्थान नियत हैं किन्तु इस विश्व में चतुर्दश स्थान कोई नियत नहीं। इसमें अनन्त लोक, अनन्त भुवन हैं। इस असीम जगत् को चतुर्दश ही भागों में कैसे विभक्त कर सकते। अतः शरीरस्थ दो नयन, दो कर्ण दो घ्राण, एक मुख ये ऊपरके सप्तलोक और दो हस्त, दो चरण, एक गुदा, एक मेढ़ू और एक मध्य शरीर ये सप्त अधःस्थित लोक हैं। यह शरीर ही सुमेरु अर्थात् शोभन प्रकार से मरनेहारा पर्वत है इसी के शिखर पर इधर उधर सब भुवन हैं। इसी सुमेरु नामधारी शरीरके चारों तरफ नयनाधिष्ठाता सूर्य, मनोऽधिष्ठाता चन्द्रमा, कर्णाधिष्ठाता वायु आदि सब देव परिक्रमा कर रहे हैं। इसी को अच्छे प्रकार जानने से सर्वलाभ होता है यह कवि का भाव है। जो इस बाह्य जगत् में १४ भुवन खोजते हैं वे निस्सन्देह अज्ञानी हैं वे संस्कृत साहित्य से सर्वथा विमुख हैं। पुराण कहते हैं—

भूर्भुवः स्वर्महश्चैव जनश्च तप एव च। सत्यलोकश्च सप्तैते लोका उपरि कीर्त्तिताः॥ पुनः कहतेहैं जम्बू, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौञ्च, शाक और पुष्कर ये सप्त द्वीप हैं। लवण, इक्षु, सुरा, सर्पि, दधि, दुग्ध और जल इन सातों पदार्थों का एक २ सागर है अर्थात् सातों द्वीपों के चारों तरफ सात सागर हैं। इसी प्रकार सप्त पर्वत, सप्त [illegible]यां, सप्त गङ्गाएं इत्यादि अनेक सप्तक पुराण गातेहैं। [illegible]रु को मध्य में मानते हैं " इह हि मेरुगिरिः किल [illegible]युगः कनकरत्नमय स्त्रिदशालयः" यदि पौराणिकों से पूछा जाय कि वे सप्त लोक, सप्त पाताल वा सप्त पर्वत [illegible] सप्त सागर आदि सप्तकगण कहां हैं तो वे कुछ नहीं समाधान करसकते क्योंकि बाह्य जगत् का वर्णन यह नहीं। [illegible] शरीरका मेरु नाम रख इस पर सम्पूर्ण ब्रह्माण्डकी रचना दिखलाई गई है। पुराणों के सहस्रों श्लोक इसी भावको दिखलाते हैं। किन्तु अज्ञानी जन नहीं समझते।

सप्त नरक—दुष्कर्म महामहापातकों के करने से येही [illegible]न्द्रिय सप्त नरक बनजाते हैं। शरीर पश्चात् सप्त नरक [illegible] इस शरीर से पृथक् कल्पित हुए "स्मरन्ति च॥ [illegible]पित्र सप्त १५। वेदान्तसूत्र अ० ३। पा० १। इन सूत्रों [illegible] अर्थ शङ्कराचार्य्य करहैं कि व्यासादिकोंकी स्मृतियों में [illegible] आदि सप्तनरक उक्तहैं। [illegible] से ७×३=२१ नरक माने गये, यथा— तत्र हैके [illegible]नेकविंशतिं गणयन्ति" भा० ५। २६॥ भागवत

कहता है कि कोई २१ नरक गिनते हैं वे ये हैं-१-तामिस्र २-अन्धतामिस्र, ३—रौरव, ४—महारौरव, ५—कुंभीपाक, ६-कालसूत्र, ७-असिपत्रावन, ८-सूकरमुख, ९—अन्धकूप, १० कृमिभोजन, ११-संदंश, १२ तप्तभूमि, १३-वज्रकण्टक शाल्मलि, १४—वैतरणी, १५—पूयोद, १६—प्राणरोध, १७ विशसन, १८-लालाभक्ष, १९ सारमेयादन, २०—अवीची, २१-अयःपान। वे कहते हैं कि वहां यमराज चित्रगुप्त के साथ विराजमान हैं इत्यादि। परन्तु यह भी शरीर की ही वर्णन है। अहोरात्ररूप महाकाल ही यम है क्योंकि पुराणोंमें कहा गयाहै कि सूर्यका पुत्र यमहै। निःसन्देह अहोरात्र ही सूर्य का पुत्र यम है। श्राद्धनिर्णय में इस का वर्णन देखिये! रात्रि यमी और दिन यम है । मन ही चित्रगुप्त है क्योंकि मनही गुप्त रीतिसे शुभाशुभ सब कर्मों को लिखता रहता है जो कुछ मनुष्य करता है उसका फोटो मन पर खींचा जाता है। यह मन एक अद्भुत पदार्थ है। सप्तेन्द्रिय-युक्त शरीर ही स्वर्ग वा नरक है अन्य नहीं। इसी शरीरसे नाना यातनाओं को लोग भोग नहीं रहे हैं?

अनेक सप्तकगण—यहां यह स्मरण रखना चाहिये कि वेदोंमें सूर्य सप्तरश्मि, सप्तकिरण कहा गया है। किरणों में सात प्रकार के रङ्ग हैं। अतः सूर्य सप्तकिरण है। पश्चात् अज्ञानी जन सूर्य के रथ में सचमुच सात घोड़े मानने लगे। सूर्यवत् यह जीवात्मा भी सप्तरश्मिहै। नयनादि इसके किरण हैं एवं परमात्मा ने गायत्री, अनुष्टुप् आदि

सप्त छन्दों में वेदों का उपदेश किया है। सूर्य और जीव के सप्त किरण लेके धीरे २ अनेक सप्तक बनते गये । रवि, सोम, आदि दिन भी सप्त माने गये हैं। निषाद, ऋषभ, गान्धार, षड्ज, मध्यम, धैवत और पञ्चम ये सप्तगान स्वर हैं। व्याकरण में प्रथमा, द्वितीया आदि सप्त विभक्तियां हैं इसी प्रकार सप्त पाकयज्ञ, सप्त हविर्यज्ञ, सप्त सुत्य आदि हैं !

इन्द्र देव---मैंने इसलेख में लिखा है कि जीवात्मा का नाम इन्द्र है। यद्यपि यह शब्द अनेकार्थक है तथापि ऐसे प्रकरण में जीवात्मा को इन्द्र कहते हैं। वेदों के पढने से प्रतीत होता है कि सूर्य और जीवात्मा के अर्थ में इसके भूरि २ प्रयोग हुए हैं-१-नाम, २-कर्म, ३-और परिवार से इन्द्र जीवात्मा सिद्ध होता है १-इद्रिय=इन्द्र शब्द से इन्द्रिय बनता है। महर्षि पाणिनि कहते हैं कि—इद्रिय-मिन्द्रलिङ्ग मिन्द्रदृष्ट मिन्द्रसृष्ट मिन्द्रजुष्ट मिन्द्रदत्त-मिति वा । सू०।२।९३। इन्द्रिय शब्द के इन्द्रलिङ्ग, इन्द्रदृष्ट, इन्द्रसृष्ट.इन्द्रजुष्ट इन्द्रदत्त ये पांच अर्थ हैं "इन्द्र आत्मा तस्यलिङ्ग मिन्द्रियम्" इत्यादि । इन्द्र=जीवात्मा इसका सूचक इन्द्रिय है अर्थात् नयनादियों के अस्तित्व से जीवात्मा के अस्तित्व का पता लगता है अतः नयनादिकों को इन्द्रिय कहते हैं। इसी प्रकार इन्द्रदृष्ट आदि, का अर्थ समझिये। शतक्रतु=जिसके नानाकर्म्म हैं "शतं क्रतवः कर्माणि यस्य" अथवा जीवात्मा के जो १०० वर्ष

की आयु है वे ही क्रतु अर्थात् यज्ञ हैं । जिसके जन्म से लेकर मरण पर्य्यन्त १०० वर्ष जिसका शुद्ध जीवन बीता है वही यथार्थ इन्द्र है। अतः पुराणों में कहा गया है कि जो १०० यज्ञ करता है वह इन्द्र होता है। ठीक है। निश्चय जिसकी सम्पूर्ण आयु जो १०० वर्ष की है शुद्धता से बीत रही है वही जीवात्मा इन्द्रपद्धारी होगा। क्योंकि "इदि परमैश्वर्य्ये" परमैश्वर्य्यशालीको इन्द्र कहते हैं। पश्चात् जब इन्द्र एक पृथक् देव माना गया तो इसके ऊपर यह लांछन लगाया कि यह इन्द्र किसी को १०० यज्ञ करने ही नहीं देता, घोड़ा चुराकर यज्ञ में विघ्न डाल देता। मरुत्वान्=मरुत्=वायु =प्राण। इन्द्र के ४९ वायु साथी हैं। यह सिद्ध करता है कि जीवात्मा का ही नाम इन्द्र है। इसी प्रकार अन्यान्य नाम भी इसी अर्थं के सूचक हैं।

इन्द्र और ४९ मरुत्—महाभारत बाल्मीकीय रामायण और भागवत आदिक ग्रन्थों में लिखा है कि देवासुर संग्राम में पुत्रों के मरने से परमदुःखिता दिति देवी एक दिन स्वामी कश्यपजी से प्रार्थना कर बोली कि इन्द्रहन्ता एक पुत्र मुझे दीजिए! कश्यपजी ने कहा कि एक वर्ष नियम धारण कीजिये वैसा ही एक पुत्र होगा। दिति व्रत करने लगी। इन्द्र ने यह खबर सुन एक दिन दिति को अशुचि जान पेट में प्रवेश कर उदरस्थ बालक के सात टुकड़े कर दिये। पुनः एक २ के सात २ टुकड़े किये वह अरुवा पेट में रोने लगा, इन्द्र ने कहा कि मारुदिहि २ "मत रोओ मत रोओ। अतः उसका नाम मरुत् वा मारुत हुआ।

दितिने यह साहस देख प्रसन्न हो इन्द्रसे कहाकि तुम्हारे ये भाई हैं अपने साथ ही इन्हें भी रक्खो। इन्द्र ने भी इसे स्वीकार किया। तब से ४९ वायु इन्द्र के गण हुए। इन्द्र मरुत्वान् कहलाने लगा। यह ऐतिहासिक कल्पना है।

प्रमाण—

चकर्त सप्तधा गर्भं वज्रेण कनकप्रभम्। रुदन्तंसप्तधैकैकं मारोदीरिति तान् पुनः। भागवत ६। १८॥

समीक्षा—मा रोदीः२ वा मा रुदिहि२ इत्यादि कथन से मरुत् यह नाम नहीं हुआ किन्तु यह मर मर शब्द करनेहारा है वा मारनेहारा है क्योंकि प्राण वायु के निकलने से ही आदमी मृतक समझा जाताहै। समष्टि अर्थात् समुदाय ब्रह्माण्ड का नाम अदिति है (न+दिति=अखण्ड, समुदाय, अविनाश) और व्यष्टि अर्थात् पृथक् २ मनुष्य पश्वादि शरीर दिति है (दिति=खण्ड, विनाश) प्रत्येक माता दिति है। जब गर्भ रहता तब एक ही समुदाय प्राणवायु उस जलीय गर्भ के साथ रहता है। आत्मा के प्रवेश होते ही अङ्ग प्रत्यङ्ग बन के वही प्राण सात हिस्सों में विभक्त हो नयनादि सात बनजाता है। पश्चात् एक २ नयनादिकों के जो अनन्त विषय हैं उनको ७×७=४९ उनचास नाम देते हैं यह एक वर्णन करनेकी प्राचीन शैली है। इस आख्यान से विस्पष्टतया सिद्ध है कि यह जीवात्मा का ही वर्णन है। क्योंकि सात नियत संख्या एंइसी शरीर में हैं इसीमें जीवात्मा के प्रवेश से एक प्राण सात होते हैं और पुनः ग्रहणीय विषय करके ७×७=४९

होते हैं बाह्य जगत् में कोई ४९ मरुद्गण नहीं। विस्तार से वैदिकइतिहासार्थनिर्णय में देखिये। इस कर्म से भी सिद्ध है कि जीवात्मा ही इन्द्र है। पुनः—

अपां फेनेन नमुचेः शिर इन्द्रोदवर्त्तयः। विश्वा यदजयःस्पृधः ॥

चारों वेदों में यह ऋचा आई है (इन्द्र अपां फेनेन) हे इन्द्र! आप जल के फेन से (नमुचेः शिरः उदवर्त्तयः) नमुचि नाम के असुर के शिर को काट लेते हैं। कब (यद्) जब (विश्वाः स्पृधः अजयः) सम्पूर्ण स्पर्धमान आसुरी सेनाओं को जीतते हैं इस पर शतपथ ब्राह्मण कहता है—

इन्द्रियस्येन्द्रियमन्नस्य रसं सोमस्य भक्षं सुरयाऽसुरो नमुचि रहरत् सोऽश्विनौ च सरस्वतीं चोपाधावत् शेपानोऽस्मि नमुचये न त्वा दिवा न नक्तं हनानि न दण्डेन न धन्वना न पृथेन न मुष्टिना न शुष्केण नार्द्रेण अथ म इद महार्षीदिदं म आजिहीर्षथेति" । शत० ब्रा० १२। ७। ३॥

असुर नमुचि ने सुरा पिलाकर इन्द्र के ऐश्वर्य, अन्न रस और सोमयज्ञ के भक्ष का हरण कर लिया। अश्विद्वय और सरस्वती के निकट जा के इन्द्र बोला कि नमुचि को बर दिया कि न दिन में न रात्रि में तुम्हें मारूंगा न दण्ड से न धनुष् न मुष्टि से न शुष्क न आर्द्र

अर्थात् किसी अस्त्र से मैं तुम्हें न मारूंगा। इसने मेरा सर्वस्व हरण करलिया हे देवी ! मेरी रक्षा कीजिये । तब अश्विद्वय और सरस्वती जल के फेन को वज्र बना इन्द्र को दे बोले कि यह न शुष्क न आर्द्र है। प्रातःकाल जो न दिन और न रात्रि है उस समय इससे उसको मारदो इन्द्र ने भी वैसाही किया

यह आख्यान भी सूचित करता है कि जीवात्मा का ही नाम इन्द्र है क्योंकि "पाप्मा वै नमुचिः।" शत० ब्रा० १२ । ७॥ पाप, अज्ञान, अविद्या, अन्धकार का नाम नमुचि है। "नमुञ्चति न त्यजतीति नमुचिः" इस जीवात्मा को अज्ञान वा पाप कभी नहीं छोड़ता अतः अज्ञान-पाप का नाम नमुचि है। "नभ्राण् नपात् नवेदा नासत्या नमुचि नकुल नख नपुंसक नक्षत्र नक्र नाकेषु प्रकृत्या ६ । ३ । ७५॥ सूत्रानुसार नमुचि सिद्ध होता है यह नमुचि जीवात्मा को सुरा अर्थात् मदकारी पदार्थों के द्वारा मोहित कर भोगविलास में फंसा सब हरण कर लेता । पहिले जीव को भोगविलास--अतिमनोहर मालूम होते। महादुर्व्यसन में फंसना ही नमुचि को इन्द्रद्वारा वर पाना है। यह पापरूप महासुर जीव को त्रिभुवन से गिरा देता है, यही इन्द्र का त्रिलोकीराज्य से भ्रष्ट होना है। जब पुनः नाना दुःख क्लेश यातना पाके किञ्चित् विवेक होता तो घबराकर वह इन्द्र अश्विद्वय और सरस्वती के निकट पहुंचता। अहोरात्रकाल वा तेजोऽन्धकार मिश्रित प्रातःकाल ही अ-

न्द्रिय और विद्याही सरस्वती है अर्थात् जब जीवात्मा विद्या ज्ञान विवेक आदिकों का अभ्यास करता हुआ प्रात काल ईश्वर का चिन्तन करता है तब पापों से छूटने लगता है। विद्याएं, विवेक और प्रातःकाल के विचार इस उपासक को शुभ कर्म्म की ओर लेजाते हैं शुभ कर्म्मों का सम्पादन करना ही आप् (जल) है। वेदों में आप् शब्द शुभकर्म्म का उपलक्षक होता है शुभकर्म्म करते करते इसको ज्ञान प्राप्त होजाता है। यही अपांफेन है। इस ज्ञानरूप महावज्र से प्रातःकाल अर्थात् ईश्वर के चिन्तन के परमोत्तम समय में प्रतिदिन नमुचि को पछारना शुरू करता है। घोर नमुचि के काम लोभ, दुर्व्यसन, अज्ञान आदि गणों को मारकर इसे भी हनन कर इन्द्र निश्चिन्त हो पूजित होने लगता है। यही इस ऋचा और आख्यान का आशय है आप परिडत महाशय इसे विचारें।

इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कुतः।
जघान नवतीर्नव॥ ऋग् १।८४।१३॥

यह ऋचा भी सब वेदों में आई है (अप्रतिष्कुतः इन्द्र) अधर्षणीय अजेतव्य इन्द्र (दधीचः अस्थभिः) दध्यङ् ऋषि की हड्डियों से (नवतीः नव वृत्राणि) ९९ और वृत्रों को (जघान) हनन करता है। अस्थभिः=छन्दस्यपि दृश्यते इति अनजादावपि अस्थिशब्दस्य अनङादेशः।

व्याख्या—यह आख्यान भी इसी अर्थ का साधक है वेदों में दध्यङ् और अन्यान्य ग्रन्थों में दध्यङ और दधीचि दोनों

पाठ आते हैं। शतपथादि ब्राह्मण ग्रंथों से लेकर तुलसीदास के रामायण पर्य्यन्त दधीचि की हड्डी से इन्द्रने असुरोंको मारा है यह गाथा गाई गई है। इसके १८ वें पृष्ठ में ९९ नदियों से इन्द्र पार होता है यह कहा गया है। यहां ९०+९=९९ वृत्रों की चर्चा देखते हैं वे वृत्र कौन हैं? इसके रहस्य के जाने विना इसका आशय प्रगट नहीं होता आवरणशील मेघ, अज्ञान, अन्धकार, पाप आदिकोंको वृत्र कहते हैं। वे ९९ हैं। क्यों? देवों की ३३ संख्या है यह विदितही है। ये मनसहित एकादश इन्द्रिय उत्तम, मध्यम, अधम भेद से ३३ होते हैं। और ३३×३=९९ हैं। वेदों की एक यह शैली है कि दुष्टों की संख्या त्रिगुण अधिक दिखलाते हैं, जैसे वेदों में कहा है कि इन्द्र द्विनेत्र एक शिरस्क है किन्तु वृत्र षडक्ष (छः आंखवाला) और त्रिशीर्षा तीन शिर-वालाहै। अतः देवों अर्थात् शुभ इन्द्रियों की संख्या ३३ है और तद्विपरीत असुरकीके ९९ हैं अर्थात् मनुष्य में यदि शुभ कर्म करने की शक्ति एक है तो अशुभ कर्म करनेकी शक्ति तीन हैं। इसी भाव को ९९ यह संख्या दिखलाती है: दध्यङ् यह नाम ज्ञानी पुरुषों का है (दधातीति दधिर्धाता परमात्मा तमञ्चतीति दध्यङ्) अस्थि=विद्वानों की निकाली हुई विविध विद्याएं। विद्वानों की हड्डी भी काम आती है यह कहावत लोक में सुप्रसिद्ध है। इन्द्र=जीवात्मा। वृत्र अर्थात् नाना पाप अज्ञान जब इन्द्र (जीवात्मा) को घेर कर विवश कर लेते हैं तब यह उद्विग्न हो विद्वानों के निकट जाताहै उनसे शिक्षाएं पाके मानो उन शिक्षाओं

को ही अपना परमास्त्र बना वृत्रों को मारदेता है। वैदिक इतिहासार्थ निर्णयमें विस्तारसे वर्णित कथा को देखिये।

इन्द्र और संग्राम—यह भी इसी अर्थ का द्योतक है। वेदोंमें इन्द्रका मुख्य कार्य्य संग्राम करना और विजय के द्वारा देवों व भक्तोंको लाभ पहुंचानाहै। इसके वृत्र, नमुचि, शम्बर, चुमुरि, धुनि, पिप्रु, वल, अर्बुद, वर्ची, कुयव आदि अनेक शत्रुहैं "शुष्णं पिप्रुं कुयवं वृत्रमिन्द्र यदाऽव धीर्वि पुरः शम्बरस्य" ऋग् १।१०३।८॥ इसी एक ऋचा में अनेक नाम आये हैं जिनको इन्द्र मारा करता है। जब देवगण यज्ञों में इन्द्र को अभिषिक्त करके यज्ञोंके विविध भाग देतहैं तब वह बलिष्ठ हो निखिल असुरों का निपात करता है। इस वर्णनका भी भाव यह है कि जब जीवात्मा शुभ कर्म्मों में प्रवृत्त होता है तब ही पापरूप महान् असुरों को अपने निकट नहीं आने देता यही इसका विजय है।

इन्द्रके परिवार—शची इन्द्र की स्त्री मानी जाती है कर्म्म और प्रज्ञा का नाम भी शची है निघण्टु।२।१ और ३।९। जीवात्मा के कर्म्म अर्थात् प्रयत्न और ज्ञान ये दोनों मुख्य गुण हैं। अतः इन्द्र की स्त्री शची कहाती है। इन्द्राणी=इन्द्र की स्त्री ऐसे २ स्थानों में शक्तिरूप गुण अर्थ में स्त्री शब्द का प्रयोग है। शची और इन्द्राणी शब्द के पाठ वेदों में बहुत हैं:—

इन्द्राणीमासु नारिषु सुभगा महमश्रवम्। नह्यस्या अपरञ्चन जरसा मरते पतिः। सर्वस्मादिन्द्र उत्तरः १०।९९॥

. इन्द्र का घोड़ा उच्चैःश्रवा है। यह शरीर ही उच्चैःश्रवा है क्योंकि इस मानवशरीर का ही यश उच्च है। श्रव= यश। यह शरीर ही ऐरावत हाथी है क्योंकि यह अन्नमय है वा अन्न से पुष्ट होता है। इरा=अन्न। इत्यादि परिवार के वर्णन से भी इन्द्र जीवात्मा सिद्ध होता है।

इन्द्र और सूर्य्य--सूर्य्य को भी इन्द्र कहते हैं। इस सम्बन्ध में भी अनेकानेक वर्णन आते हैं। सहस्राक्ष, देवराज, स्वर्गाधिपति, मघवा, वृत्रघ्न, मरुत्वान् इत्यादि नामों से सूर्य्य भी पुकारा जाता था। जब सूर्य्य से भिन्न इन्द्र एक पृथक् देव कल्पित हुआ तब इसके सम्बन्ध में अनेक इतिहास उत्पन्न होने लगे। जैसे इन्द्र को सहस्राक्ष सिद्ध करने के लिये इतिहास गढ़ा गया कि अहल्या को दूषित करते हुए इन्द्र को गौतम ने शाप दिया कि तेरा सम्पूर्ण शरीर विकृत होजाय पश्चात् इन्द्र के पुनः २ विनय करने पर प्रसन्न हो गौतम ने कहा कि रामावतार में तेरा शरीर सहस्र नेत्रों से युक्त होगा। तब ही से इन्द्र सहस्राक्ष कहलाने लगा।

अप्सरा—यह नाम और घृताची, मेनका, उर्वशी आदि नाम सूर्य के किरणों के अथवा प्रातःकाल के थे। पश्चात् इन्द्र पृथक् देव होने पर ये सब इन्द्र की वेश्याएं बन गईं। पर्वत, अद्रि, गिरि आदि मेघ के नाम थे। निघण्टु १। १० इन्द्र अर्थात सूर्य्य मेघ को बनाता और विध्वस भी करता है अतः सूर्य ही पर्वतघ्न पर्वतच्छेदी था। पश्चात् ये सब इन्द्र में आरोपित हुए। इस प्रकार शब्दशास्त्र और संस्कृत साहित्य में महान् परिवर्तन हुआ है। मुझे शोक के साथ

लिखना पड़ता है आज भारतवासियों में स्वल्प पुरुष हैं जो इस महान् परिवर्तन से परिचित हों ।

वेद और इतिहास—यद्यपि, मैत्रावरुण वसिष्ठ, कौशिक विश्वामित्र, मामतेय दीर्घतमा, अगस्त्य, लोपामुद्रा, वसिष्ठ-उर्वशी, उर्वशी पुरूरवा, कूपपतित त्रित, दीर्घतमा, शुनःशेप, दधीचि, च्यवन, सोभरि, ययाति, नहुष, भरत, रोमशा, अपाला, घोषा आदिकों की चर्चा आती है। परन्तु वेद के देखने मात्र से प्रतीत होजाता है कि ये परार्थद्योतक हैं, किन्हीं अनित्यमानव इतिहासों नहीं, इसीप्रकार सप्तसिन्धु, गङ्गा, यमुना, सरस्वती, गोमती, गन्धार आदि पद देखकर जो आधुनिक ऐतिहासिकपुरुष अनुमान करते हैं कि वेदों में भारतवर्षीय इन गङ्गा, यमुना आदि नदियों का और कन्धार आदि देशों का वर्णन आता है वे सर्वथा भ्रम में पड़े हुए हैं। सर्वदा सप्तसिन्धु पद क्यों आता है वेद क्योंकर सप्तसिन्धु इस पद पर वारम्वार जोर देते हैं इत्यादि वैदिक संकेत पर यदि इतिहासवित् पुरुष दृष्टि डालेंगे तो इनका सर्व भ्रम दूर होजायगा। मैं जगत् के सम्पूर्ण इतिहासविद् विद्वानों से निवेदन करताहूं कि मेरे वैदिक व्याख्यानों पर ध्यान देवें और इस शैली से पुनः वेदों का विचार कर देखें कि वेद भगवान् क्या कह रहे हैं। इसमें सन्देह नहीं कि इन पर इस शताब्दी में ऐसा वज्रप्रहार हुआ है कि इनको स्वस्थ होने में बहुत काल लगेगा, यदि सहस्रों सद्वैद्य विचार कर इनको दवाई करने लग जायं।

शुभमस्तु ॥

वैदिक-रहस्य ॥

आर्य्यभ्राताओ ! अभीतक वेदों के ऊपर साक्षात् विचार यथार्थरूपसे आर्यों तथा पौराणिकों में नहीं हुआ है । वेदों पर कितने लाञ्छन लगाए हुए हैं उनको कौन नहीं जानता । प्रत्येक भारतवासी को उचित था कि वह इस ओर पूरा ध्यान देता, परन्तु कई सहस्र वर्षों से यह कार्य न हो सका । मैं अपनी बुद्धि के अनुसार कई वर्षों से वेद सम्बन्धी लेख लिख आपके निकट पहुंचा रहाहूं । अभी तक मेरा मनोरथ पूर्ण नहीं हुआ, मैं इतने से प्रसन्न नहीं हूं अब मैं आप लोगों की सहायता से चाहताहूं कि वेदों के गुप्त २ अर्थ प्रकाशित किये जायं । नमूना के लिये यह "चतुर्दश भुवन" प्रथम आपके समीप उपस्थित है विशेष लिखने की आवश्यकता नहीं, यदि आप लोग इससे कुछ लाभ समझते हैं तो इस के ग्राहक बनें और बनावें । अग्रिम मूल्य भेजनेवालों को १००० एकसहस्रपृष्ठों का ग्रन्थ ३॥=) में मिलेगा इस के चार भाग निकल चुके हैं ।

भवदीय

शिवशङ्कर

ग्रन्थ मिलने का पता

मंत्री, आर्य्यसमाज

मु० डा० कमतौल

ज़िला दरभङ्गा

ग्रन्थकर्त्ता के अन्यान्य ग्रन्थ—

१—छान्दोग्योपनिषद्भाष्य, संस्कृत और आर्य्य-भाषासहित मूल्य ३)
२—बृहदारण्यकोपनिषद्भाष्य, संस्कृत और आर्य्यभाषासहित ३)
३—ओङ्कारनिर्णय ... ... „ „ ।−)
४—त्रिदेवनिर्णय ... ... „ „ ।।।)
५—जातिनिर्णय ... ... „ „ १)
६—श्राद्धनिर्णय ... ... „ „ ।।।)
७—वैदिक इतिहासार्थनिर्णय „ „ १।।)
८—अलौकिक-माला... ... „ „ −)
९—कृष्णमीमांसा ... ... „ „ −)।।
१०—प्रश्न—रामायण-प्रेमियों के प्रति गूढ़ २ प्रश्न हैं „)।।

पुस्तक मिलने का पता—
मंत्री, आर्य्यसमाज
मु० डा० कमतौल
ज़िला दरभङ्गा